आर्यसमाज के सम्बन्ध में
इन्टरनेट पर उपलब्ध हिन्दी पुस्तकें

Hindi books
1. हक प्रकाश बजवाब सत्यार्थ प्रकाश : मौलाना सनाउल्लाह अमृतसरी
2. सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा की समीक्षा : सतीश चंद गुप्ता (New)
3. वेद और स्वामी दयानंद–हिन्दी : गाज़ी महमूद धर्मपाल
4. दयानंद जी ने क्या खोजा क्या पाया ? : डा. अनवर जमाल
5. मुबाहिसा–ए–गोश्तखोरी हिन्दीः डाक्टर बशीर अहमद
6. चौदहवीं के चांद पर एक दृष्टि ('एक समीक्षात्मक लेख')

Urdu books
1. हक प्रकाश बजवाब सत्यार्थ प्रकाश : मौलाना सनाउल्लाह अमृतसरी
2. मुकददस रसूल : मौलाना सनाउल्लाह अमृतसरी
3. तबर्रे इस्लाम बजवाब नखले इस्लाम : मौलाना सनाउल्लाह अमृतसरी
4. तुर्के इस्लाम बजवाब तर्के इस्लाम : मौलाना सनाउल्लाह अमृतसरी
5. स्वामी दयानंद और उनकी तालीमः खाजा गुलाम मुहम्मद हस्नेन (की 45 साल की महनत का नतीजा)
6. मुबाहिसा–ए–गोश्तखोरी उर्दू: डाक्टर बशीर अहमद
7. वेद का भेद : मौलाना सनाउल्लाह अमृतसरी
8. कुफर तोड : गाज़ी महमूद धर्मपाल
9. बुत शिकन : गाज़ी महमूद धर्मपाल
10. वेद और स्वामी दयानंद–उर्दू: गाज़ी महमूद धर्मपाल
11. स्वामी दयानंद का इल्मो अक़ल : मौलाना सनाउल्लाह अमृतसरी
12. मुनाजिरा हैद्राबाद (आर्य समाजी विद्वानों से मौलाना सनाउल्लाह और दूसरे उलमा का सात दिन का मुनाजिरा)
13. मुबाहिसा–ए– शाहजहांपुर (मौलाना कासिम साहब नानौतवी का स्वामी दयानंद और इसाई पादरियों से 3 दिन का एतिहासिक मुनाजरा)
14. यजुर्वेद के दर्शन–यानि 24वां अध्याय : अब्दुल कबीर खां पूर्व धर्मवीर जी आर्य ने टाइटिल पर छपी जानकारी के मुताबिकं कुरबानी के मुखालिफीन के इत्मीनान के वास्ते 1926 में छपवाया।

सतीश चंद गुप्ता के ब्लाग पर भी
Satishchandgupta.blogspot.in
उपरोक्त पुस्तकों के टार्गेट लिंक उपलब्ध हैं

स्वामी दयानंद जी ने
क्या खोजा, क्या पाया ?
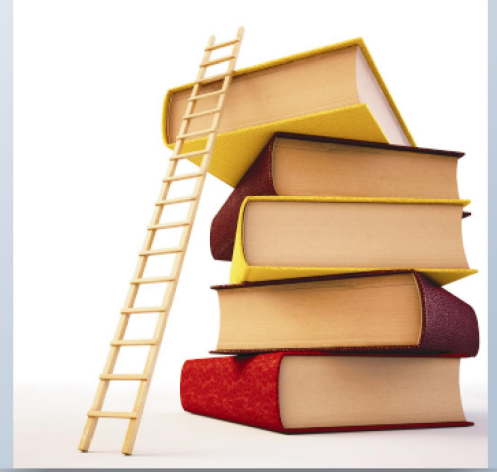
डा. अनवर जमाल

सनातन संदेश संगम
मौहल्ला सौत रूड़की
उत्तराखंड

स्वामी दयानन्द जी ने
क्या खोजा क्या पाया?

(परिवर्धित संस्करण) II/C

लेखकः डा. अनवर जमाल

प्रकाशक
मिल्लत उर्दू/हिन्दी एकेडमी
मौहल्ला सोत, रूड़की
उत्तराखण्ड, भारत

नाम पुस्तकः स्वामी दयानन्द जी ने क्या खोजा क्या पाया?

लेखकः डा. अनवर जमाल, बुलन्दशहर
dr.anwerjamal@gmail.com
vandeishwaram.blogspot.com

सहयोगीः डा. मुहम्मद असलम क़ासमी, रूड़की
डा. अयाज़ अहमद, देवबन्द
सलाहकार समितिः मुहम्मद उमर कैरानवी, दिल्ली
मुहम्मद साजिद कमाल (M.A.,L.L.B.)
इन्जीनियर सतीश चन्द गुप्ता, मुज़फ़्फ़रनगर
हैदर ज़माँ ख़ाँ (M.A.,L.L.B.) रूड़की
पण्डित जितेन्द्र कुमार, मेरठ

प्रथम संस्करणः अगस्त 2009 संख्याः 1000
द्वितीय संस्करणः सितम्बर 2013 संख्याः 1000

प्रकाशकः मिल्लत उर्दू-हिन्दी एकेडमी
मौहल्ला सोत, रूड़की
उत्तराखण्ड, भारत

भूमिका

इंसान का रास्ता नेकी और भलाई का रास्ता है। यह रास्ता सिर्फ उन्हें नसीब होता है जो धर्म और दर्शन (Philosophy) में अन्तर जानने की बुद्धि रखते हैं। धर्म ईश्वर द्वारा निर्धारित होता है जो मूलतः न बदलता है और न ही कभी बदला जा सकता है, अलबत्ता धर्म से हटने वाला अपने विनाश को न्यौता दे बैठता है और जब यह हटना व्यक्तिगत न होकर सामूहिक हो तो फिर विनाश की व्यापकता भी बढ़ जाती है।

दर्शन इंसानी दिमाग़ की उपज होते हैं। ये समय के साथ बनते और बदलते रहते हैं। धर्म सत्य होता है जबकि दर्शन इंसान की कल्पना पर आधारित होते हैं। जैसे सत्य का विकल्प कल्पना नहीं होती है। ऐसे ही धर्म की जगह दर्शन काम नहीं दे सकता। धर्म के बजाय दर्शन के अनुसार जीना ग़लत ढंग से जीना है, जिसका अंजाम तबाही की शक्ल में सामने आता है। इसीलिए हज़ारों वर्ष पहले हमारे समाज में बहुदेववाद, जातिवाद और अन्याय पनपा, युद्ध हुए। एक आर्यावर्त में हज़ारों देश बने। विदेशी आक्रमण से ज़्यादा देशी आक्रमण हुए। परायों से ज़्यादा अपनों का ख़ून, अपनों के हाथों बहता रहा। विद्वान बताते हैं कि अकेले महाभारत के युद्ध में ही 1 अरब 66 करोड़ मनुष्य मारे गए। हज़ारों युद्ध और भी हुए, लाखों तबाहियाँ हुईं और आख़िरकार हम विदेशियों के ग़ुलाम बन गए। हम आज भी क़र्ज़दार हैं। हमें तीसरी दुनिया के देशों में गिना जाता है। इस तरह धर्म वाला विश्वगुरू भारत दर्शनों पर चलकर बर्बाद हो गया।

भारत एक धर्म प्रधान देश था लेकिन बाद में दार्शनिकों ने इसे दर्शन प्रधान बना दिया। आज हर तरफ़ दर्शनों का बोलबाला है। दर्शनों की भीड़ में धर्म कहीं खो गया है। आज वैदिक धर्म में अग्नि का बड़ा महत्व है। अग्नि के बिना यज्ञ-हवन नहीं हो सकता। वैदिक धर्म के 16 संस्कारों में से कोई एक भी बिना अग्नि के संपन्न नहीं हो सकता। जबकि अग्नि की खोज से पहले मनुष्य परमेश्वर की उपासना और अंतिम संस्कार आदि अग्नि के बिना ही करता था।

अग्नि की खोज के बाद धर्म का रूप बदल गया। पहले जिस धर्म में उपासना के लिए ध्यान और नमन था, उसमें अब हवन भी शुरू कर दिया। इस तरह धर्म से हटने और दर्शन पर चलने की शुरूआत हुई। इन्हें लिखा गया तो वेद, उपनिषद व दर्शन आदि बन गए। समय के साथ यज्ञ के रीति रिवाज जटिल हो गए। राजकोष जनकल्याण के कामों पर ख़र्च होने के बजाय महीनों चलने वाले महंगे यज्ञों में स्वाहा होने लगा। तब बौद्ध, जैन और चार्वाक आदि ने जनता के विरोध को स्वर दिया। उनकी बातों में भी दर्शन था। यज्ञ करने वाले और उनका विरोध करने वाले, दोनों ही दर्शन की बातें कर रहे थे। धर्म कहीं पीछे छूट चुका था।

ये अनेकों दर्शन धर्म की जगह लेते चले गए। इसी से विकार जन्मे। सुधारकों ने उन्हें सुधारने का प्रयास भी किया। लाखों गुरूओं के हज़ारों साल के प्रयास के बावजूद यह भारत भूमि आज तक जुर्म, पाप और अन्याय से पवित्र न हो सकी। कारण, प्रत्येक सुधारक ने पिछले दर्शन की जगह अपने दर्शन को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया, धर्म को नहीं। उन्हें पता ही न था कि दर्शनों की रचना से पूर्व धर्म का स्वरूप क्या था ?

स्वामी दयानन्द जी भी एक ऐसे ही दार्शनिक थे। धर्म को न जानने के कारण उन्होंने सुबह शाम अग्निहोत्र (हवन) करना हरेक मनुष्य का कर्तव्य निश्चित कर दिया और न करने वाले को सत्यार्थप्रकाश, चौथे समुल्लास (पृष्ठ 65) में शूद्र घोषित कर दिया। आर्य समाज मंदिरों में भी दोनों समय हवन नहीं होता। आर्य समाज के सदस्य और पदाधिकारी तक दोनों समय हवन नहीं करते। सुबह शाम हवन, वह आर्य समाजियों से अपने सामने भी न करा पाए।

नतीजा यह हुआ कि जो लोग उनके पास आर्य बनने के लिए आते थे, वे हवन न करने के कारण शूद्र अर्थात मूर्ख बनते रहे। स्वामी दयानंद जी के अनुसार सनातनी पंडित लोगों को मूर्ख बना रहे थे और उनका विरोध करने वाले स्वामी जी ख़ुद भी आजीवन यही करते रहे। उनके बाद भी यह सिलसिला जारी है। उनकी घोर असफलता का कारण केवल यह था कि उन्हें दर्शन का ज्ञान था, धर्म का नहीं।

धर्म में ध्यान और नमन है, हवन नहीं। अग्नि की खोज से पहले भी धर्म यही था और आज भी धर्म यही है। सनातन काल से मनुष्य का धर्म यही है। इसलाम इसी सनातन धर्म की शिक्षा देता है। इसलाम का विरोध वही करता है, जिसे धर्म के आदि सनातन स्वरूप का ज्ञान नहीं है। ऐसे ही दार्शनिकों के कारण बहुत से मत बने और अधिकतर मनुष्य धर्म से हटकर विनाश को प्राप्त हुए।

जिस भूमि के अन्न-जल से हमारी परवरिश हुई और जिस समाज ने हम पर उपकार किया, उसका हित चाहना हमारा पहला कर्तव्य है। मानवता को महाविनाश से बचाने के उद्देश्य से ही यह पुस्तक लिखी गई है। जगह-जगह मिलने वाले दयानन्दी बंधुओं के बर्ताव ने भी इस पुस्तक की ज़रूरत का अहसास दिलाया और स्वयं स्वामी जी का आग्रह भी था-

'इस को देख दिखला के मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करके मुझे वा

सब महाशयों का मुख्य कर्तव्य काम है।'

(भूमिका, सत्यार्थप्रकाश, पृष्ठ 5)

सो हमने अपना कर्तव्य पूरा किया। अब ज़िम्मेदारी आप की है। आपका फैसला बहुत अहम है। अपना शुभ-अशुभ अब स्वयं आपके हाथ है। स्वामी जी के शब्दों में हम कह सकते हैं कि

'यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिए किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है।' (सत्यार्थप्रकाश, अनुभूमिका 4, पृ. 360)

'इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि या विरोध करने में नहीं किन्तु सत्याऽसत्य का निर्णय करने कराने का है।' (सत्यार्थप्रकाश, अनुभूमिका, पृ.186)

विनीत,

डॉ. अनवर जमाल, बुलन्दशहर
eshvani@gmail.com
vandeishwaram.blogspot.com
दिनांक - बुद्धवार, 29 जुलाई 2009
श्रावण, अष्टमी द्वितीया, सं0 2066
द्वितीय, दिनांकः रविवार, 15 सितम्बर 2013
9 ज़ी-क़ाअदा 1434 हिजरी

¤ मैं कौन हूँ और मुझे क्या करना चाहिये?

एक इनसान जब होश संभालता है तो ऐसे बहुत से प्रश्न उसके मन को बेचैन करते हैं। जब वह इस सृष्टि पर नजर डालता है और पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं, फसलों और मौसमों को, धरती की सुंदरता और अंतरिक्ष की विशालता को, सूर्य से लेकर परमाणु तक को, उनकी संरचना, संतुलन और उपयोगिता को देखता है तो सहज ही कुछ प्रश्न पैदा होते हैं कि यह सब कुछ खुद से है या इसका कोई बनाने वाला और चलाने वाला है? अगर यह सब कुछ खुद से ही है तो इतना संतुलन और नियमबद्धता, इतनी व्यवस्था और उपयोगिता इन बुद्धि और चेतना से खाली निर्जीव पदार्थो में आई कैसे? और अगर कैसे भी इत्तेफ़ाक़ से आ गई तो फिर निरन्तर कैसे बनी हुई है? और अगर ऐसा नहीं है बल्कि किसी ज्ञानवान हस्ती ने इस सृष्टि की रचना की है तो उसने ऐसा किस उद्देश्य से किया है? उसने मनुष्य को क्यों पैदा किया? और वह उससे क्या चाहता है? वह कौन सा मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी पैदाईश के उद्देश्य को पाने में सफल हो सकता है? आदि आदि।

मनुष्य अपने परिवार वालों को दुख उठाकर मरते हुए देखता है तो उसके दिल में मौत का डर बैठ जाता है। तब वह सोचने लगता है कि मौत से कैसे बचा जाए या कम से कम मौत के कष्ट से बचने का ही उपाय ढूंढ लिया जाए।

¤ स्वामी जी के घर छोड़ने का उद्देश्य था मृत्यु समय के दुःखों से बचना

स्वामी दयानन्द जी ने भी अपनी 14 वर्षीय बहन को विशूचिका (हैज़ा) से मरते हुए देखा। वह स्वयं बताते हैं-

'सारांश यह है कि उसी समय पूर्ण विचार कर लिया कि जिस प्रकार हो सके मुक्ति प्राप्त करूं जिसके द्वारा मृत्यु समय के समस्त दुःखों से बचूं।'

(महर्षि दयानन्द सरस्तवी का जीवन चरित्र, पृष्ठ 39)

इस घटना के लगभग 3 वर्ष बाद उनके चाचा की मृत्यु भी विशूचिका से ही हो गई। स्वामी जी बताते हैं-

'इसके पश्चात मुझे ऐसा वैराग्य हुआ कि संसार कुछ भी नहीं किन्तु यह बात माता-पिता जी से तो नहीं कही किन्तु अपने मित्रों और विद्वान पंडितों से पूछने लगा कि अमर होने का कोई उपाय मुझे बताओ। उन्होंने योगाभ्यास करने के लिए कहा। तब मेरे जी में आया कि अब घर छोड़कर कहीं चला जाऊं।'

(महर्षि दयानन्द सरस्तवी का जीवन चरित्र, पृष्ठ 40)

...और सचमुच वह एक दिन घर छोड़कर निकल खड़े हुए।

¤ स्वामी जी बच न पाए मृत्यु समय के दुःखों से

सारे जप-तप, यम-नियम और योगाभ्यास के बावजूद वह न तो अमर हो सके और न ही मुक्ति पा सके और न ही मृत्यु समय के भयानक दुःखों से बच सके, जिसके लिए वह घर से निकले थे। स्वामी जी अपनी बहन और अपने चाचा की अपेक्षा कई गुना अधिक दुःख उठाकर मरे।

महर्षि दयानन्द सरस्तवी का जीवन चरित्र, पृष्ठ 821 पर लिखा है-

'फिर उनको तीस-तीस चालीस-चालीस दस्त नित्य आया करते थे। जिससे वह दिन प्रतिदिन निर्बल होते गए।'

उन्हें पेट-दर्द भी होता था। उनका मूत्र कोयले के समान निकलता था। उनकी मुंह और जीभ पक गए थे। गले में कफ़ भी बहुत हो गया था। उनका बोलना भी बंद हो गया था। डाक्टर की बात का जवाब भी संकेत से देते थे। उनकी यह हालत 1 महीने से ज़्यादा रही।

'एक दिन मृत्यु के समीप एक आर्य ने पूछा कि महाराज । आपका गला बैठ जाने का क्या कारण है तो मुख खोलकर बतलाया कि यहां से नाभि तक सब पक गया है और धीमे स्वर से कहा कि नाभि तक छाले पड़ गए हैं।'

(महर्षि दयानन्द सरस्तवी का जीवन चरित्र, पृष्ठ 835)

स्वामी जी दोनों समय हवन भी नहीं कर पाते थे। स्वामी जी को गाड़ी से उतरना होता था या शौच के लिए बैठना होता था तो चार आदमियों को उन्हें उतारना या बैठाना पड़ता था। स्वयं उनमें यह करने की शक्ति न रह गई थी। मृत्यु के दिन जब उन्होंने क्षौरकर्म करवाया। उन्होंने नहाने की इच्छा की लेकिन लोगों ने नहाने न दिया। उनकी अंतिम इच्छा भी पूरी न हो पाई। उन्होंने गीले कपड़े से सिर पोंछा। इसी हाल में वह चल बसे।

¤ मक़सद और तरीक़ा, दोनों ग़लत

वास्तव में उनका मक़सद और तरीक़ा दोनों ही ग़लत थे। दुनिया में अमर होने की इच्छा करना भी ग़लत है और इस मक़सद के लिए घर छोड़ना भी ग़लत है। दुनिया में अमर होना या दुःख से बच पाना प्राकृतिक नियम और सृष्टि विज्ञान के विरूद्ध है।

ज़िंदगी का सच्चा मक़सद और उसे पाने का सही तरीक़ा केवल सच्चा गुरू ही बता सकता है। इसीलिए ज्ञान देने वाला एक गुरू वास्तव में ज़मीन और आसमान के सारे ख़ज़ानों से भी बढ़कर है। उसका अनुसरण करके ही मनुष्य अपने लक्ष्य को पाकर सफल हो सकता है। इस तरह एक सच्चे और ज्ञानी गुरू की तलाश हरेक मनुष्य की बुनियादी और सबसे बड़ी ज़रूरत है। लेकिन जैसा कि इस दुनिया का क़ायदा है कि हर असली चीज़ की नक़ल भी यहाँ मौजूद है। इसलिए जब कोई मनुष्य गुरू की खोज में निकलता है तो उसे ऐसे बहुत से नक़ली गुरु मिलते हैं जिन्हें खुली आँखों से नजर आने वाली चीजों तक की सही जानकारी नहीं होती लेकिन वे ईश्वर और आत्मा जैसी हक़ीक़तों के बारे में अपने अनुमान को ज्ञान बताकर लोगों को भटका देते हैं।

मूलशंकर ने सच्चे योगी गुरू की खोज शुरू की, जो उसे 'सच्चे शिव' के दर्शन करा सके। इस खोज में वह पहले 'शुद्धचैतन्य' और फिर 'दयानन्द' बन गये लेकिन उन्हें पूरे भारत में ऐसा कोई योगी गुरू नहीं मिल पाया जो उन्हें 'सच्चे शिव' के दर्शन करा देता। योगी गुरू की खोज में असफल होने के बाद उन्होंने स्वामी बिरजानन्द जी से थोड़े समय वेदों को जानने-समझने का प्रयास किया। इस दौरान उन्होंने मथुरा, काशी और वृन्दावन आदि तीर्थों की यात्रा भी की। जहां उन्होंने प्रत्येक स्तर पर व्याप्त पाखण्ड, भ्रष्टाचार और अनाचार को खुद अपनी आंखों से देखा । तब उन्होंने अपनी सामर्थ्य भर हिन्दू समाज के सुधार का बीड़ा उठाने का निश्चय किया।

दयानन्द जी वास्तव में अपने निश्चय के पक्के और बड़े जीवट के स्वामी थे। उन्होंने मूर्ति पूजकों के गढ़ में जाकर मूर्ति पूजा का खंडन किया। उन्होंने हिन्दू राजाओं को वेश्यागमन से रोका। उन्होंने सामान्य हिन्दुओं को भी व्यभिचार, समलैंगिकता व दूसरी बुराईयाँ छोड़ने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने अध्ययन के मुताबिक़ अपना एक दृष्टिकोण बनाया और फिर उसी दृष्टिकोण के मुताबिक़ लोगों को वर्णाश्रम धर्म का उपदेश दिया और कुछ साहित्य भी रचा। यह साहित्य आज भी हमारे लिए उपलब्ध है।

¤ क्या दयानन्द जी का आचरण उनके दर्शन के अनुकूल था?

स्वामी जी की मान्यताएं सही हैं या ग़लत? और वह 'संसार को मुक्ति' दिलाने के अपने उद्देश्य में सफल रहे या असफल? और यह कि क्या वास्तव में उन्हें सत्य का बोध प्राप्त था? आदि बातें जानने के लिए स्वयं उनके आहवान पर उनके

साहित्य का अध्ययन करना ज़रूरी है। सच्चाई जानने के लिए उनके जीवन को स्वयं उनकी ही मान्यताओं की कसौटी पर परख लेना काफी है क्योंकि सच्चा ज्ञानी वही होता है जो न केवल दूसरों को उपदेश दे बल्कि स्वयं भी उस पर अमल करे ।

दयानन्द जी मानते थे कि अपराधी को क्षमा करना अपराध को बढ़ावा देना है -'क्या ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है ?' इसके उत्तर में वे कहते हैं -

'नहीं। क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराधियों के अपराध क्षमा कर दे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक-अधिक बड़े-बड़े पाप करें। क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा हो जाए कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे। इसलिए सब कर्मों का फल यथावत देना ही ईश्वर का काम है क्षमा करना नहीं।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम., पृष्ठ 127)

'न्याय और दया का नाम मात्र ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से... क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया का नाश हो जाए क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्त्रों धर्मात्मा पुरूषों को दुख देना है। जब एक के छोड़ने में सहस्त्रों मुनष्यों को दुख प्राप्त होता है, वह दया किस प्रकार हो सकती है ?' (सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम0, पृष्ठ 118)

अब दयानन्दजी के उपरोक्त दर्शन के आधार पर स्वयं उनके आचरण को परख कर देखिये कि दया और न्याय का जो सिद्धान्त उन्होंने ईश्वर, राजा और धार्मिक जनों के लिए प्रस्तुत किया है, स्वयं उस पर कितना चलते थे?

सबसे पहले वह घटना देखिए, जिसमें उनके धोड़ मिश्र रसोईये के द्वारा उन्हें विष देना बताया जाता है-

'स्वामी जी को पता लग गया कि जगन्नाथ ने यह कार्य किया है। उन्होंने उससे कहा-'जगन्नाथ, तुमने मुझे विष देकर अच्छा नहीं किया। मेरा वेदभाष्य कार्य अधूरा रह गया। संसार के हित को तुमने भारी हानि पहुँचाई है। हो सकता है, विधाता के विधान में यही हो । ये रूपए रख लो। तुम्हारे काम आएंगे। यहाँ से नेपाल चले जाओ क्योंकि यहाँ तुम पकड़े जाओगे। मेरे भक्त तुम्हें छोड़ेंगे नहीं।' (युगप्रवर्तक0, पृष्ठ 151)

स्वामी जी की जीवनी लिखने वाले आर्य समाजी लेखक इस घटना को सत्य मानते हैं। हम भी उनकी मृत्यु का कारण उन्हें विष दिया जाना ही मानते थे लेकिन एक हिन्दू भाई ने कहा कि यह घटना झूठी है। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उनके जीवन की घटनाओं के विषय में वही ग्रन्थ प्रामाणिक है। उसमें यह घटना नहीं है।

दिल्ली में विश्व पुस्तक मेला लगा तो हमने एक सहयोगी मित्र के से कहा कि वह हमारे लिए आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र' की एक कॉपी ले आएं। वह पुस्तक हमने पढ़ी तो वाक़ई उसमें कहीं नहीं लिखा है कि स्वामी जी ने अपने रसोइये से कहा हो कि

'जगन्नाथ, तुमने मुझे विष देकर अच्छा नहीं किया। मेरा वेदभाष्य कार्य अधूरा रह गया। संसार के हित को तुमने भारी हानि पहुँचाई है। हो सकता है, विधाता के विधान में यही हो । ये रूपए रख लो। तुम्हारे काम आएंगे। यहाँ से नेपाल चले जाओ क्योंकि यहाँ तुम पकड़े जाओगे। मेरे भक्त तुम्हें छोड़ेंगे नहीं।'

जैसा कि युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र जैसी पुस्तकों में लिखा मिलता है। स्वामी जी ने अपने रसोईये से तो क्या किसी से भी कभी नहीं कहा कि उन्हें किसी ने ज़हर दे दिया है। स्वामी जी के नाम पर आर्य समाजी प्रचारक बरसों से इतना बड़ा झूठ बोलकर आम लोगों को धोखा क्यों देते आ रहे हैं?

स्वामी जी को लोगों की नज़रों में 'शहीद' का सम्मानित दर्जा दिलाने के लिए ही यह झूठ आम किया गया। यह झूठ फैलाते समय उन्होंने यह नहीं सोचा कि जब कभी यह झूठ पकड़ा जाएगा तो लोगों में 'आर्य समाज' की विश्वसनीयता ही ख़त्म हो जाएगी?

इस घटना को सच माना जाए तो स्वामी दयानन्द जी की विश्वसनीयता ख़त्म हो जाती है।

(1) क्या दयानन्द जी ने न्याय और दया को नष्ट नहीं कर दिया?

(2) दयानन्द जी ने अपनी दार्शनिक मान्यता के विपरीत जाकर अपने हत्यारे को क्यों क्षमा कर दिया?

(3) क्या इस पाप कर्म की वृद्धि का बोझ दयानन्द जी पर नहीं जाएगा?

(4) क्या अपने आचरण से उन्होंने अपने विचारों को निरर्थक और महत्वहीन सिद्ध नहीं कर दिया?

(5) संसार के हित को भारी हानि पहुंचाने वाले दुष्ट हत्यारे को क्षमा करने का अधिकार तो स्वयं संसार को भी नहीं है बल्कि

यह अधिकार तो दयानन्द जी ईश्वर के लिए भी स्वीकार नहीं करते। फिर स्वयं किस अधिकार से एक दुष्ट हत्यारे को क्षमा करके रूपये देकर उसे भाग जाने का मशविरा दिया?

(6) क्या एक दुष्ट हत्यारे को समाज में खुला छोड़कर उन्होंने एक अपराधी के उत्साह को नहीं बढ़ाया और पूरे समाज को खतरे में नहीं डाला?

दयानन्द जी द्वारा अपने अपराधी को क्षमा करने की यह पहली घटना नहीं है बल्कि अनगिनत मौकों पर उन्होंने अपने सताने वालों और हत्या का प्रयास करने वालों को क्षमा किया है।

'फर्रूखाबाद में आर्यसमाज के एक सभासद की कुछ दुष्टों ने पिटाई कर दी। लोगों ने स्कॉट महोदय से उसे दण्ड दिलाया । पर स्वामीजी को रूचिकर न लगा। उन्होंने स्कॉट महोदय तथा सभासदों से कहा - चोट पहुंचाने वाले को इस तरह दण्डित करना आपकी मर्यादा के ख़िलाफ है। महात्मा किसी को पीड़ा नहीं देते, अपितु दूसरों की पीड़ा हरते हैं।' (युगप्रवर्तक0, पृष्ठ 130)

सम्वत् 1924 में भी स्वामीजी को एक ब्राह्मण ने पान में ज़हर खिला दिया था। कर्तव्यनिष्ठ तहसीलदार सय्यद मुहम्मद ने अपराधी को गिरफ्तार करके स्वामी जी के आगे ला खड़ा किया तो वे बोले -

'तहसीलदार साहब, मैं आपके कर्तव्यनिष्ठा से अत्यन्त प्रभावित हूँ। लेकिन आप इसे छोड़ दें। कारण, मैं संसार को कैद कराने नहीं, अपितु मुक्त कराने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता, तो हम सन्यासी अपनी उदारता कैसे छोड़ सकते हैं।' (युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द, पृष्ठ 49)

(7) इस प्रकार अपराधियों को क्षमा करना और दण्ड से छुड़वाना क्या स्वयं अपनी दार्शनिक मान्यता का खण्डन करना नहीं है?

(8) क्या स्कॉट महोदय व तहसीलदार आदि दुष्टों को दण्ड देने वालों से दुष्टों को छोड़ने की सिफारिश करना उनको राजधर्म के पालन करने से रोकना नहीं है। जिसकी वजह से दुष्टों का उत्साह बढ़ा होगा और वे अधिक पाप करने में प्रवृत्त हुए होंगे?

(9) क्या इस बात की संभावना नहीं है कि इसी प्रकार के आचरण को देखकर जगन्नाथ पाचक ने सोचा होगा कि अव्वल तो मैं पकड़ा नहीं जाऊंगा और यदि पकड़ा भी गया तो कौन सा स्वामी जी दण्ड दिलाते हैं, 'हाथ जोड़ने आदि चेष्टा' करके बच जाऊंगा और स्वामी जी की क्षमा करने की इसी आदत ने उस हत्यारे का उत्साह बढ़ाया हो?

उनके इस प्रकार के स्वकथन विरूद्ध आचरण से उनकी अन्य दार्शनिक मान्यताएं भी संदिग्ध हो जाती हैं।

''नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिए-जैसे 'न्यायकारी' ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका यथावत न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।'' (सत्यार्थप्रकाश, एकादश., पृष्ठ 210)

'इससे फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे अपने गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना है। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम., पृष्ठ 120)

(10) जब न्यायकारी ईश्वर दुष्टों को क्षमा न करके दण्ड देता है तो दयानन्दजी ने ईश्वर का गुण 'न्यायकारी' स्वयं क्यों ग्रहण नहीं किया?

(11) अगर ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के विपरीत चलते हुए उसकी स्तुति आदि करना दयानन्द जी की दृष्टि में भांड के समान व्यर्थ चेष्टा है तो क्या दयानन्द जी की स्तुति व उपासना आदि भी व्यर्थ और निष्फल ही थी?

(12) यदि दयानन्द जी परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव जैसे अपने गुण, कर्म, स्वभाव नहीं बना पाये थे तो क्या वह परमेश्वर को प्राप्त हो पाए होंगे जबकि उनके पास 'सीढ़ी' भी नहीं थी?

¤ सीढ़ी टूटी हो तो परमेश्वर नहीं मिलता

माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पुरुष के लिए पत्नी की अहमियत बताते हुए स्वामी जी कहते हैं- 'ये पाँच मूर्तिमान् देव जिनके संग से मनुष्यदेह की उत्पित्त, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश को प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियाँ हैं।' (सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास, पृष्ठ 216)

माता-पिता को छोड़कर तो वह खुद ही निकल गए थे। विवाह उन्होंने किया नहीं इसलिए पत्नी भी नहीं थी। वह खुद दूसरों पर आश्रित थे और न ही कभी उन्होंने कुछ कमाया। इस तरह उन्होंने अतिथि सेवा का मौका भी खो दिया। सीढ़ी के चार पाएदान तो उन्होंने खुद अपने हाथों से ही तोड़ डाले। आचार्य की सेवा उन्होंने ज़रुर की, लेकिन वे कभी-कभी ऐसा कुछ कर जाते थे कि आचार्य उनके इतने ज़ोर से डण्डा मारता था, कि उसका निशान उनके शरीर पर हमेशा के लिए छप जाता था। एक बार तो बिरजानन्द जी ने उनकी अवज्ञा के कारण अपनी पाठशाला से उनका नाम ही काट दिया था। इसी सीढ़ी के टूटे होने के कारण न उन्हें परमेश्वर मिला, न गुरू का प्यार मिला और न ही कोई अच्छा शिष्य मिल पाया। वह स्वयं कहा करते थे-

मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि मुझे इस जन्म में सुयोग्य शिष्य नहीं मिलेगा। इसका प्रबल कारण यह भी है कि मैं तीव्र वैराग्यवश बाल्यकाल में माता पिता को छोड़कर सन्यासी बन गया था। (युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ. 121)

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ने भी उनके विश्वस्त सेवकों के विषय में यही बताया है-

'विश्वस्त सेवक भी सब निकम्मे निकले-स्वामी जी के पास जितने मनुष्य भरोसे के थे, सब निकम्मे निकले।' (महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, पृष्ठ 820)

'स्वामी जी का उन सब पर से विश्वास उठ गया।' (हवाला उपरोक्त)

भारत को विश्वगुरु के महान पद से गिराने में ऐसे जिज्ञासु परन्तु अज्ञानी लोगों का बहुत बड़ा हाथ है। जो पहले अपनी सीढ़ी तोड़ बैठे और फिर जीवन भर खुद भी भटकते रहे और दूसरों को भी भटकाते रहे। स्वामी जी जैसे लोगों के जीवन से यही शिक्षा मिलती है कि लोगों को अपनी सीढ़ी की रक्षा करनी चाहिए और जिन लोगों ने अपनी सीढ़ी तोड़ दी हो, ऐसे नादानों को गुरु नहीं समझना चाहिए।

¤ क्या दयानन्द जी की अविद्या रूपी गाँठ कट गई थी?

भिद्यते हृदयग्रिन्थरिद्द्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तिस्मनदृष्टि पराऽवरे ।।1।।मुण्डक।।

जब इस जीव के हृदय की अविद्या रूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें निवास करता है। (सत्यार्थ प्रकाश, नवम0, पृश्ठ 171)

ईश्वर का सामीप्य पाने के लिए यहां तीन बातों पर बल दिया गया है-

(13) जीव के हृदय की अविद्या रूपी गांठ कट जाती है।

(14) सब संशय छिन्न होते हैं।

(15) सब दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं।

(16) क्या हम कह सकते हैं कि दयानन्दजी ने दुष्टों को क्षमा करके और उन्हें तहसीलदार आदि अधिकारियों के दण्ड से छुड़वाकर दुष्टों का उत्साहवर्धन किया? यदि यह सही है तो दयानन्दजी में उपरोक्त तीसरे बिन्दु वाली विशेषता दृष्टि गोचर नहीं होती ।

(17) न ही उनके सब संशय छिन्न हो सके थे क्योंकि वह स्वयं ही एक सिद्धान्त निश्चित करते हैं और जब आर्य सभासद उसका पालन करते हैं तो फिर स्वयं ही उन्हें दुष्टों को दण्ड न देने की बात कहते हैं। यह उनके संशयग्रस्त होने का स्पष्ट उदाहरण है या नहीं?

(18) क्या यह अविद्या की बात न कही जाएगी कि एक आदमी सारे जगत को उस बात का उपदेश करे जिस पर न तो स्वयं उस को विश्वास हो और न ही उस पर आचरण करे जैसे कि उपरोक्त दुष्टों को क्षमा न करने का उपदेश करना और स्वयं लगातार क्षमा करते रहना?

¤ क्या दयानन्द जी वेदों का वास्तविक अर्थ जानते थे?

(19) यदि दयानन्द जी की अविद्या रूपी गांठ ही नहीं कट पायी थी और वह परमेश्वर के सामीप्य से वंचित ही रहकर चल बसे थे तो वह 'वेद' को भी सही ढंग से न समझ पाये होंगे?, जिसे वह परमेश्वर की वाणी मानते थे। उदाहरणार्थ, दयानन्दजी एक वेदमन्त्र का अर्थ समझाते हुए कहते हैं-

'इसीलिए ईश्वर ने नक्षत्रलोकों के समीप चन्द्रमा को स्थापित किया।' (ऋग्वेदादि0, पृष्ठ 107)

(20) परमेश्वर ने चन्द्रमा को पृथ्वी के पास और नक्षत्रलोकों से बहुत दूर स्थापित किया है, यह बात परमेश्वर भी जानता है और आधुनिक मनुष्य भी। फिर परमेश्वर वेद में ऐसी सत्यविरूद्ध बात क्यों कहेगा?

स्वामी जी के वेदार्थ को सही माना जाए तो वेद ईश्वरीय वचन सिद्ध नहीं होता या फिर इस मन्त्र का सही अर्थ कुछ और है और स्वामी जी ने अपनी कल्पना के अनुसार इसका ग़लत अर्थ निकाल लिया । इसकी पुष्टि एक दूसरे प्रमाण से भी होती है, जहाँ दयानन्द जी ने यह कल्पना कर डाली है कि सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रादि सब पर मनुष्यादि गुज़र बसर कर रहे हैं और वहाँ भी वेदों का पठन-पाठन और यज्ञ हवन, सब कुछ किया जा रहा है और अपनी कल्पना की पुष्टि में ऋग्वेद (मं0 10, सू0 190) का प्रमाण भी दिया है-

'जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे?' (सत्यार्थ., अष्टम. पृ. 156)

(21) क्या यह मानना सही है कि ईश्वरोक्त वेद व सब विद्याओं को यथावत जानने वाले ऋषि द्वारा रचित साहित्य के अनुसार सूर्य व चन्द्रमा आदि पर मनुष्य आबाद हैं और वे घर-दुकान और खेत खलिहान में अपने-अपने काम धंधे अंजाम दे रहे हैं?

¤ क्या परमेश्वर भी कभी असफल हो सकता है?

'परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है?' (सत्यार्थ., अष्टम. पृ. 156)

(22) स्वामी जी ने परमेश्वर की सफलता को सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों पर मनुष्यादि के निवास पर निर्भर समझा है। इन लोकों में अभी तक किसी मनुष्यादि प्रजा का पता नहीं चला है, तो क्या परमेश्वर को असफल और निष्प्रयोजन काम करने वाला समझ लिया जाये? या यह माना जाए कि स्वामी जी इन सब लोकों की उत्पत्ति से परमेश्वर के वास्तविक प्रयोजन को नहीं समझ पाए?

अतः ज्ञात हुआ कि स्वामी जी ईश्वर, जीव और प्रकृति के बारे में सही जानकारी नहीं रखते थे। एक शोधकर्ता को यह शोभा नहीं देता कि वह वेदों के वास्तविक मन्तव्य को जानने समझने के बजाए उनके भावार्थ के नाम पर अपनी कल्पनाएं गढ़कर लोगों को गुमराह करे ।

¤ स्वामी जी की कल्पना और सौर मण्डल

''इसलिए एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक चन्द्र अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।'' (सत्यार्थप्रकाश, पृष्ठ 156)

यह बात भी पूरी तरह गलत है। स्वामी जी ने सोच लिया कि जैसे पृथ्वी का केवल एक उपग्रह 'चन्द्रमा' है। इसी तरह अन्य ग्रहों का उपग्रह भी एक-एक ही होगा। The Wordsworth Encylopedia 1995 के अनुसार ही मंगल के 2, नेप्च्यून के 8, बृहस्पति के 16 व शानि के 20 उपग्रह खोजे जा चुके थे। आधुनिक खोजों से इनकी संख्या में और भी इज़ाफा हो गया ।

सन् 2004 में अन्तरिक्षयान वायेजर ने दिखाया कि शानि के उपग्रह 31 से ज़्यादा हैं। (द टाइम्स ऑफ इण्डिया, अंक 2-07-04, मुखपृष्ठ) इसके बाद की खोज से इनकी संख्या में और भी बढ़ोतरी हुई है। अंतरिक्ष अनुसंधानकर्ताओं ने ऐसे तारों का पता लगाया है जिनका कोई ग्रह या उपग्रह नहीं है।

'PSR 19+16 नामक प्रणाली में एक दूसरे की परिक्रमा करते हुए दो न्यूट्रॉन तारे हैं।' (समय का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ 96, ले. स्टीफेन हॉकिंग संस्करण 2004, प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन प्रा. लि0, नई दिल्ली-2)

'खगोलविदों ने ऐसी कई प्रणालियों का पता लगाया है, जिनमें दो तारे एक दूसरे की परिक्रमा करते हैं। जैसे CYGNUS X-1, सिग्नस एक्स-1' (पुस्तक उपरोक्त, पृष्ठ 100)

(23) वेदों में विज्ञान सिद्ध करने के लिए स्वामी जी ने जो नीति अपनाई है उससे वेदों के प्रति संदेह और अविश्वास ही उत्पन्न होता है। क्या इससे खुद स्वामी जी का विश्वास भी ख़त्म नहीं हो जाता है ?

¤ आकाश में सर्दी-गर्मी होती है, सर्दी से परमाणु जम जाते हैं, भाप से मिलकर किरण बलवाली होती है

'... क्योंकि आकाश के जिस देश में सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी की छाया रोकती है, उस देश में शीत भी अधिक होती है। ... फिर गर्मी के कम होने और शीतलता के अधिक होने से सब मूर्तिमान पदार्थो के परमाणु जम जाते हैं। उनको जमने से पुष्टि

होती है और जब उनके बीच में सूर्य की तेजोरूप किरणें पड़ती हैं तो उनमें से भाप उठती है। उनके योग से किरण भी बलवाली होती है।' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ 145 व 146)
(24) सर्दी-गर्मी धरती पर होती है आकाश में नहीं और वह भी पृथ्वी द्वारा सूर्य के प्रकाश को रोकने की वजह से नहीं होती।
(25) और न ही सर्दी बढ़ने से सब चीज़ों के परमाणु जमते हैं। टुण्ड्रा प्रदेश की तेज़ सर्दी में भी सब चीज़ों के परमाणु नहीं जमते। पता नहीं परमाणु के सम्बन्ध में स्वामी जी की कल्पना क्या है?
(26) भाप से मिलकर प्रकाश को भला क्या बल मिलेगा? यह वेदों का कथन है या स्वयं स्वामी जी की कल्पना?

¤ सृष्टि संरचना की ग़लत कल्पना को वैदिक सिद्धान्त समझ बैठे स्वामी जी?

'... सबसे सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणु, साठ परमाणुओं से मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्वयणुक जो स्थूल वायु है तीन द्वयणुक का अग्नि, चार द्वयणुक का जल, पांच द्वयणुक की पृथिवी अर्थात तीन द्वयणुक का त्रसरेणु और उसका दूना होने से पृथ्वी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मिलाकर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं।' (सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम. पृ.152)

हरेक अणु में 60 परमाणु होते हैं। ऐसा कहना विज्ञान के विरूद्ध है। परमाणु को अविभाज्य मानना भी ग़लत है। दरअसल स्वामी जी के काल तक परमाणु को तोड़ना संभव नहीं हुआ था। इसलिए वह ऐसा लिख गए हैं। पहले परमाणु को अविभाज्य माना जाता था परन्तु अब परमाणु को तोड़ना संभव है। स्वयं भारत की धरती पर ही कई 'परमाणु रिएक्टर' इसी सिद्वान्त के अनुसार ऊर्जा उत्पादन करते हैं। अतः यह सृष्टि नियम के प्रतिकूल कल्पना मात्र है। दरअसल यह कोई वैदिक सिद्धान्त नहीं है बल्कि एक दार्शनिक मत है।

आग, पानी, हवा और पृथ्वी की संरचना का वर्णन भी विज्ञान विरूद्ध है। उदाहरणार्थ चार द्वयणुक अर्थात 8 अणुओं के मिलने से नहीं बल्कि हाइड्रोजन के 2 और ऑक्सीजन का 1 अणु, कुल 3 अणुओं के मिलने से जल बनता है। इसी तरह पृथ्वी भी पांच द्वयणुक से नहीं बनी है बल्कि कैल्शियम, कार्बन, मैग्नीज़ आदि बहुत से तत्वों से बनी है और हरेक तत्व की आण्विक संरचना अलग-अलग है। वायु और अग्नि के विषय में भी स्वामी का मत ग़लत है।

¤ अग्नि के विषय में भी स्वामी जी का मत ग़लत है

अग्नि 3 द्वयणुक अर्थात 6 अणुओं के मिलने से नहीं बनती। जैसा कि स्वामी ने कहा है। उन्होंने जीवन भर हवन किया लेकिन कभी 8 अणु मिलाकर आग नहीं जलाई और न ही कोई आर्य विद्वान आज ऐसा कर सकता है। विज्ञान के अनुसार अग्नि दहनशील पदार्थों का तीव्र ऑक्सीकरण है। जिससे ऊष्मा, प्रकाश और कार्बन डाई ऑक्साईड जैसे अन्य अनेक रासायनिक प्रतिकारक उत्पाद उत्पन्न होते हैं। अग्नि को बुझाना हो तो ईंधन और ऑक्सीजन में से किसी एक को अलग कर दिया जाता है।

यदि स्वामी जी के मत को मान लिया जाता तो देश की सारी उन्नति ठप्प हो जाती। उनके विचार आज प्रासंगिक नहीं रह गये हैं। समय ने उन्हें रद्द कर दिया है। जिन लोगों को म्लेच्छ कहकर हेय समझा गया, देश के वैज्ञानिकों ने उन्हीं का अनुकरण करके उन्नति की है।

(27) यदि प्रकृति के विषय में अभारतीयों का ज्ञान सत्य और श्रेष्ठ हो सकता है तो फिर ईश्वर और जीव के विषय में क्यों नहीं हो सकता?

¤ सब एक माता पिता की सन्तान हैं

सत्य की प्राप्ति के लिए शठवृत्ति, भेदभाव और अहंकार का त्याग ज़रूरी है। वैसे भी सब मनु की सन्तान हैं- 'जनं मनुजातं' (ऋग्वेद 1,45,1)

'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् धरती के सब मनुष्य एक परिवार हैं । आधुनिक वैज्ञानिकों ने पाया है कि धरती के सभी मनुष्य एक ही जोड़े अर्थात एक ही स्त्री-पुरूष की सन्तान हैं। जैसा कि इसलाम कहता है।

मा भ्राता भ्रातारं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यग्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

'भाई, भाई से और बहन, बहन से द्वेष न करे। एक मन और गति वाले होकर मंगलमय बात करें।' (अथर्ववेद 3,30,3)

वैमनस्य और नफ़रत फैलाना छोड़कर सद्भावना प्रेम, शांति, एकता, ज्ञान और उन्नति का माहौल बनाना चाहिए। अन्य देशवासी भाई बहनों के पास भी ईश्वरीय ज्ञान है। उनसे ज्ञान प्राप्त करने में संकोच नहीं करना चाहिए। यही सर्वहितकारी और

मंगलमय बात है।

¤ वेद में क्यों नहीं मिलता स्वामी जी का बताया वेदमंत्र?

स्वामी जी की यह कल्पना भी ग़लत निकली कि

'आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्त्रों मनुष्य उत्पन्न हुए। और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक माँ-बाप की सन्तान हैं।' (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम., पृ.150)

...और वह भी प्रमाण भी झूठा निकला, जो इस मान्यता की पुष्टि में उन्होंने इससे पहले लिखा है कि

'मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त' (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम., पृ.150)

आश्चर्यजनक किन्तु सत्य यह है कि उपरोक्त मंत्र यजुर्वेद में है ही नहीं। स्वामी जी ने एक ऐसी मान्यता का और एक ऐसे मंत्र का प्रचार कर दिया जो कि वेद में नहीं है। आर्य समाजी विद्वान भी ढूंढ ढूंढ कर थक गए। उन्हें भी वेद में यह प्रमाण नहीं मिला। उन्हें स्वामी जी की रचनाओं को शुद्ध करते हुए 140 वर्ष से ज़्यादा हो गए लेकिन उनकी रचनाएं फिर भी शुद्ध नहीं हो पाईं। उपरोक्त अशुद्धि आज भी सत्यार्थप्रकाश में विद्यमान है। जो कि वेद विषय में स्वामी जी की विश्वसनीयता समाप्त करने के लिए काफ़ी है।

स्वामी जी को यही पता न था कि यह मंत्र वेद का है या किसी अन्य ग्रन्थ का?

¤ वेदविरूद्ध पोपलीला चलाने वाला नास्तिक होता है

स्वामी जी कहते हैं-

'नास्तिक वह होता है जो वेद ईश्वर की आज्ञा विरूद्ध पोपलीला चलावे।'

(सत्यार्थप्रकाश, अष्टम., पृ.232)

¤ सूर्य किसी लोक या केन्द्र के चारों ओर नहीं घूमता

'जो सविता अर्थात सूर्य ... अपनी परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता।'

(यजुर्वेद, अ033, मं. 43/सत्यार्थप्रकाश, अष्टम. पृ. 155)

(27) यह बात भी सृष्टि नियम के विरूद्ध है। एक बच्चा भी आज यह जानता है कि सूर्य न केवल अपनी धुरी पर बल्कि किसी केन्द्र के चारों ओर भी पूरे सौर मण्डल सहित चक्कर लगा रहा है। तब सृष्टिकर्ता परमेश्वर अपनी वाणी वेद में असत्य बात क्यों कहेगा? देखिये-

'सूर्य अपनी धुरी पर 27 दिन में एक चक्कर पूरा करता है।'

(हमारा भूमण्डल, कक्षा 6, भाग 1, पृष्ठ 9, बेसिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश, लेखक- अंजु गौतम आदि)

'तुम्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि हमारा सूर्य बड़ी तेज़ी से चक्कर लगाते हुए लगभग 25 करोड़ वर्ष में अपनी आकाशगंगा की एक परिक्रमा पूरी करता है।' (पुस्तक उपरोक्त, पृष्ठ 6)

(28) स्वामी जी ने सायण, उव्वट और महीधर आदि विद्वानों को भांड, धूर्त आदि अशोभनीय शब्द कहे और उनके वेदभाष्य को भ्रष्ट बताया और केवल अपने द्वारा रचित वेदार्थ को ही ठीक बताया है। स्वामी जी वेद को ईश्वरोक्त मानते थे न कि ऋषियों की रचना। ईश्वरोक्त ग्रन्थ कैसा होता है ? इस सम्बन्ध में स्वामीजी ने कुछ पहचान बताई है। क्या स्वामी जी द्वारा बताये गए लक्षण वेद में पाए जाते हैं?

¤ ईश्वरीय ग्रन्थ में झूठ नहीं होता

'जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित, 'शुद्धगुणकर्मस्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के अनुकूल कथन हो, वह ईश्वरोक्त, अन्य नहीं। और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरूद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो, वह ईश्वरोक्त।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास, पृष्ठ 135)

(29) क्या वाक़ई वेदों में सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण के अनुकूल निर्भ्रम ज्ञान है? जो कसौटी खुद स्वामीजी ने निश्चित की है, क्या

वेद उस पर पूरे उतरते हैं?

¤ वेदों का काल जानने में भी असफल रहे स्वामी जी

वेदों का सही अर्थ न जानने के कारण स्वामी दयानंद जी यह भी नहीं जान पाए कि वेदों की रचना कब और कैसे हुई ?,

सही जानकारी के अभाव में उन्होंने यह कल्पना कर ली कि चारों वेद परमेश्वर की वाणी हैं। परमेश्वर ने सृष्टि के आरंभ में एक एक ऋषि के अंतःकरण में एक एक वेद का प्रकाश किया। अपनी इस कल्पना की पुष्टि में उन्हें कोई प्रमाण न मिला। तब उन्होंने शतपथ ब्राह्मण से एक उद्धरण दिया और उसका अर्थ अपनी कल्पना से यह बनाया-

'अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।।शत.।।

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास, पृष्ठ 135)

इस श्लोक में 'प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा द्वारा' वेद देने की बात नहीं आई है। स्वामी जी ने अपनी कल्पना को इस श्लोक में आरोपित करके यह अर्थ निकाला है। इस श्लोक में चौथे ऋषि अंगिरा को एक वेद मिलने की बात नहीं आई है। यह भी स्वामी जी की कल्पना है।

जो बात इस श्लोक में कही गई है। वह स्वामी जी ने बताई नहीं। इस श्लोक में अग्नि का संबंध ऋग्वेद से, यजुर्वेद का संबंध वायु से और सामवेद का संबंध सूर्य से दर्शाया गया है। यह संबंध स्वामी जी ने अपने अनुवाद या भावार्थ में दर्शाया ही नहीं।

¤ स्वामी जी सृष्टि की उत्पत्ति का काल जानने में भी असफल रहे

'चारों वेद सृष्टि के आदि में मिले।' स्वामी जी ने बिना किसी प्रमाण के केवल यह कल्पना ही नहीं की बल्कि उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, अथ वेदोत्पत्तिविषयः, पृष्ठ 16 पर यह भी निश्चित कर दिया कि वेदों और जगत की उत्पत्ति को एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख बावन हज़ार नौ सौ छहत्तर वर्ष हो चुके हैं।

स्वामी जी इस काल गणना को बिल्कुल ठीक बताते हुए कहते हैं-

'...आर्यों ने एक क्षण और निमेष से लेके एक वर्ष पर्यन्त भी काल की सूक्ष्म और स्थूल संज्ञा बांधी है।' (ऋग्वेदादिभाष्य., पृष्ठ 17)

'जो वार्षिक पंचांग बनते जाते हैं इनमें भी मिती से मिती बराबर लिखी चली आती है, इसको अन्यथा कोई नहीं कर सकता।' (ऋग्वेदादिभाष्य., पृष्ठ 19)

यह बात सृष्टि विज्ञान के बिल्कुल विरूद्ध है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि हमारी आकाशगंगा के सबसे पुराने सितारे की उम्र 13.2 अरब वर्ष है। दूसरी आकाशगंगाओं में इससे भी ज़्यादा प्राचीन सृष्टियां मौजूद हैं। वैज्ञानिकों ने यह भी बताया है कि हमारी पृथ्वी को बने हुए लगभग 4.54 अरब वर्ष हो चुके हैं। ऐसे में सृष्टि संवत के आधार पर इस सृष्टि को एक अरब छियानवे करोड़ वर्ष पहले उत्पन्न हुआ मानना केवल स्वामी जी की कोरी कल्पना है। जिसका कोई प्रमाण नहीं है।

¤ आर्य ज्योतिषियों का फलित भी ग़लत और गणित भी ग़लत

स्वामी जी ज्योतिष के फलित को ग़लत और उसके गणित को सही माना है। वह ज्योतिष की काल गणना पर विश्वास करके धोखा गए। बाद के वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चला कि जगत और मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में आर्य ज्योतिषियों की काल गणना बिल्कुल ग़लत है। स्वामी जी कह रहे हैं कि आर्यों ने एक एक क्षण का हिसाब ठीक से सुरक्षित रखा है लेकिन हक़ीक़त यह है कि आर्यों ने सृष्टि की जो काल गणना की है, उसमें 11 अरब वर्ष से ज़्यादा की गड़बड़ है।

वास्तव में स्वामी जी को पता नहीं था कि सितारे और ग्रह कैसे बनते हैं और उन्हें बनने में कितने अरब वर्ष का काल लगता है ?, अपनी ओर से उन्होंने लंबी से लंबी कल्पना कर ली लेकिन सृष्टि की आयु उससे भी कई गुना ज़्यादा निकली और उनका मत झूठा सिद्ध हो गया।

¤ स्वामी जी मनुष्य की उत्पत्ति का काल जानने में भी असफल रहे

सृष्टि संवत के आधार पर ही स्वामी जी ने मनुष्य की उत्पत्ति भी लगभग एक अरब छियानवे करोड़ वर्ष पूर्व मान ली।

आधुनिक खोजों के बाद आज यह जानना संभव है कि एक अरब छियानवे करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी की जलवायु कैसी थी और यह भी कि उस वातावरण में मनुष्य जीवित रह सकता था या नहीं ?

देखिए वैज्ञानिक तथ्यों को प्रदर्शित करता एक चित्र, जिसमें वैज्ञानिकों ने दर्शाया गया है कि एक अरब छियानवे करोड़ वर्ष पहले धरती पर मनुष्य नहीं पाया जाता था।

era	time (millions of years ago)	important events
	0.0	present time
Cenozoic	less than 0.1	advent of modern humans
	2.4	ice age
	66.4	mass extinction
Mesozoic	141	first flowering plants
	195	birds evolve from reptiles
	230	first dinosaurs and mammals
	245	
Paleozoic	280	mass extinction
	340	reptiles appear
	360	first insects
	370	amphibians appear
	420	plants colonize land
	540	
ecambrian	700	simple multicellular organisms evolve
	2,100	oldest eukaryotic fossils
	2,500	oxygen begins to accumulate in atmosphere
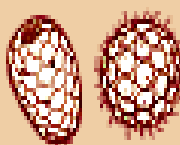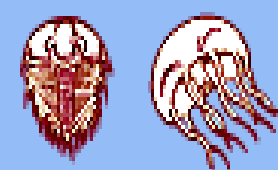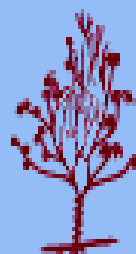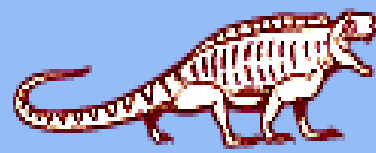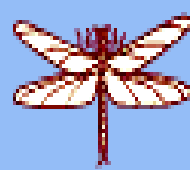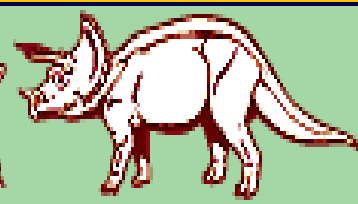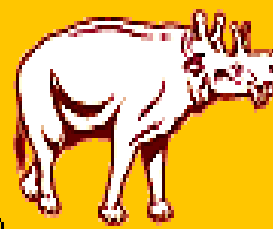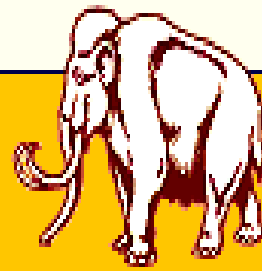
¤ वेदों की रचना के समय का निर्णय वेदों के आधार पर

वास्तव में वेद स्वयं बताते हैं कि वे कब रचे गए ?

वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि जब मनुष्य ने वेदों को प्राप्त किया, तब असुर व दस्यु आदि वर्तमान थे और वे आर्यों से युद्ध करते रहते थे। इनका वर्णन वेदों में आया है। स्वामी जी ने मनु स्मृति के आधार पर बताया है कि

'आर्य्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईरान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम दस्यु, म्लेच्छ और असुर है' (सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास, पृष्ठ 152)

अतः सिद्ध होता है कि जब ईरान तथा पश्चिमी देशों में मनुष्य निवास करने लगे, उसके बाद मनुष्यों को वेद प्राप्त हुए, उससे पहले नहीं। एक नगर को बसने में ही कई सौ वर्ष लग जाते हैं। किसी एक जगह पैदा होने के बाद मनुष्यों को इतनी दूर दूर जाने में और इतने सारे देश बसाने में कितने हज़ार वर्ष लग गए होंगे।

इससे पता चलता है कि वेद मनुष्य को सृष्टि के आदि में नहीं मिले वरन तब मिले जबकि दुनिया में बहुत से देश और बहुत सी सभ्यताएं बन चुकी थीं। उनकी भाषा, संस्कृतियां और मान्यताएं भी आर्यों से अलग थीं। उनके पास राजा, सेना और हथियार आदि सब कुछ था और उन्होंने यह सब उन्नति वेद के आने से पहले ही कर ली थी। वेद के दुनिया में आने से पहले ही बहुत तरह की विद्या का प्रकाश असुर आदि मनुष्यों में हो चुका था।

अतः स्वामी दयानंद जी का यह कहना भी ग़लत है कि

'यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं वे सब आर्य्यावर्त्त देश ही से प्रचारित हुए हैं।' (सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास, पृष्ठ 189)

¤ बहुत अधिक उन्नति के बाद मनुष्य को वेद मिले

वेदों के अध्ययन से यह पता चलता है कि आर्य्यावर्त्त देश के मनुष्य बहुत अधिक उन्नति कर चुके थे। वह संस्कृत भाषा बोलने लगे थे। वे व्याकरण और स्वरों को जानते थे। वे काव्य को समझने लगे थे। उन्होंने रथ बनाना सीख लिया था। उन्होंने घोड़े व गाय आदि पालना सीख लिया था। उन्होंने गाय आदि का दूध निकालने व उससे घी निकालने की तकनीक विकसित कर ली थी। वे हवन करते थे। उन्होंने मुर्दों को जलाना भी शुरू कर दिया था। इसका मतलब यह है कि अग्नि की खोज, पहिये के अविष्कार और घी के निर्माण के बाद ही आर्यों ने वेदों को प्राप्त किया, उससे पहले नहीं अन्यथा वे वैदिक संस्कारों को संपन्न न कर पाते। जिनका वर्णन वेदों में मिलता है।

वेद मिलने से पहले ही आर्य क़िले व बाँध बनाना जान गए थे। उन्होंने खेती करना व व्यापार करना भी सीख लिया था। उन्होंने सोने के सिक्के बनाना सीख लिया था। उनका व्यापार मुद्रा विनिमय के स्तर तक आ पहुंचा था। वे लोग अपना राजा चुनते थे। वे हर तरह से समृद्ध नगरों में रहते थे। उन्होंने लकड़ी, पत्थर और धातुओं से हथियार बनाने और उन्हें चलाने की कला भी सीख ली थी। उनकी अपनी सेना थी। उनके पास अस्त्र-शस्त्र भी थे। वे युद्ध में असुर आदि शत्रुओं को मार डालते थे। वे बीमारियों की चिकित्सा करने में प्रवीण थे। उन्हें दवाओं का अच्छा ज्ञान था। वे भौतिक व रसायन विज्ञान में प्रवीण थे। इन बातों को सनातनी और आर्य विद्वान दोनों ही मानते हैं।

स्वामी दयानंद जी के अनुसार तो वेदों में विमान और तार विद्या (टेलीग्राम) का भी वर्णन है। (देखें ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नौविमानादिविद्याविषयः, पृष्ठ 149 व तारविद्यामूलविषयः, पृष्ठ 155)

इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय आर्यों को वेद मिले उस समय तक वे विमान, टेलीग्राम यंत्र और बिजली बनाने के साधन तैयार कर चुके थे। इस तरह वेदों को प्राप्त करने वाली आर्य सभ्यता एक अति उन्नत सभ्यता के रूप में सामने आती है।

स्वामी जी के अनुसार परमेश्वर ने वेद में आर्यों की तोप और बंदूक़ों को भी स्थिर रहने का आशीर्वाद दिया है।

'हे मनुष्यो! तुम लोग सब काल में उत्तम बल वाले हो। किन्तु तुम्हारे (आयुधा) अर्थात् आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (शतघ्नी) तोप (भुशुण्डी) बन्दूक, धनुषबाण और तलवार आदि शस्त्र सब स्थिर हों।'

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरस्तुति., पृ.114)

इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय ईश्वर ने वेद में आर्यों को अपना आशीर्वाद दिया। उस समय आर्यों की सेना के पास तोप और बंदूक़ें मौजूद थीं। इतनी उन्नति सौ दो सौ वर्ष में संभव नहीं है। इसके लिए हज़ारों वर्ष का समय चाहिए। अतः मनुष्य की उत्पत्ति के हज़ारों वर्ष बाद मनुष्य को वेद प्राप्त होना सिद्ध होता है न कि सृष्टि के आदि में। जैसा कि स्वामी जी की मान्यता है।

वेद अपना काल स्वयं ही बता रहे हैं लेकिन उसे समझने में स्वामी दयानंद जी पूरी तरह असफल रहे। वास्तव में स्वामी जी न वेदों का काल समझ पाए और न ही वास्तविक वेदार्थ। स्वामी जी वेदों का वास्तविक काल और उनका अर्थ न जानते थे लेकिन फिर भी उन्होंने यही दावा किया है कि

- 'यह भाष्य प्राचीन आचार्य्यों के भाष्यों के अनुकूल बनाया जाता है। परन्तु जो रावण, उवट, सायण और महीधर आदि ने भाष्य बनाये हैं, वे सब मूलमन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरूद्ध हैं। मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता।'
- 'इस में कोई बात अप्रमाण व अपनी रीति से नहीं लिखी जाती।'
  (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरणशंकासमाधानविषयः, पृष्ठ 251)

स्वामी जी का दावा ग़लत था। उनके ग़लत दावे को सच मानने वाले जब उनके वेदार्थ में ग़लतियाँ देखेंगे तो उनका ईश्वर और उसकी वाणी से विश्वास उठ जाएगा। जबकि वे ग़लतियाँ वेद की नहीं हैं बल्कि स्वामी जी अपनी नासमझी से उनका ग़लत अर्थ कर बैठे। सृष्टि की उत्पत्ति व नियोग के विषय में उनका वेदार्थ इस ग़लती के उदाहरण हैं।

¤ हम वेद का आदर करते हैं

हम वेद का आदर करते हैं क्योंकि उसमें हमारे पूर्वजों का इतिहास और चिंतन सुरक्षित है। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने स्वामी दयानन्द जी के वेदार्थ को ग़लत सिद्ध कर दिया है। उनकी ग़लत दार्शनिक मान्यताओं को नकारे बिना वेदों का वास्तविक अर्थ जानना संभव नहीं है।

¤ वेद का सच्चा अर्थ जानने का फल

स्वयं स्वामी जी ने भी वेद का अर्थ जानने वाले का यह लक्षण बताया है कि वह सब दुःखों से रहित हो कर मोक्ष सुख को प्राप्त होता है। देखिए-

'(स्थाणु0) जो मनुष्य वेदों को पढ़ के उन के अर्थ नहीं जानता, वह उनके सुख को न पाकर भार उठाने वाले वृक्ष के समान है, जो कि अपने फल फूल डाली आदि को बिना गुणबोध के उठा रहे हैं। किन्तु जैसे उनके सुख को भोगने वाला कोई दूसरा भाग्यवान् मनुष्य होता है, वैसे ही पाठ के पढ़नेवाले भी परिश्रमरूप भार को तो उठाते हैं, परन्तु उनके अर्थज्ञान से आनन्दरूप फल को नहीं भोग सकते। (योऽर्थज्ञः0) और जो अर्थ का जानने वाला है, वह अधर्म से बचकर, धर्मात्मा होके, जन्म मरणरूप दुःख का त्याग करके, संपूर्ण सुख को प्राप्त होता है। क्योंकि जो ज्ञान से पवित्रात्मा होता है, वह (नाकमेति) सर्वदुःख रहित होके मोक्षसुख को प्राप्त होता है। इसी कारण वेदादि शास्त्रों को अर्थज्ञानसहित पढ़ना चाहिए।'
(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पठनपाठनविषयः, पृष्ठ 247)

जब एक पाठक स्वामी जी को उन्हीं की बताई कसौटी पर परखकर देखता है तो वह पाता है कि

- स्वामी जी को न तो संपूर्ण सुख प्राप्त हुआ,
- न ही उनके सब दुख दूर हुए और
- न ही उन्हें मोक्षसुख प्राप्त हुआ।

इस तरह एक सच्चे वेदज्ञानी के लक्षण उनमें नहीं मिलते। अपने ही वेदार्थ की कसौटी पर भी वह खरे नहीं उतरते।

¤ स्वामी जी की प्रार्थना भी पूरी नहीं हुई

स्वामी जी ने अपना वेदभाष्य आरंभ करने से पहले परमेश्वर से इन शब्दों में प्रार्थना की थी-

'और आपकी कृपा के सहाय से सब विघ्न हम से दूर रहें कि जिससे इस वेदभाष्य के करने का हमारा अनुष्ठान सुख से पूरा हो। इस अनुष्ठान में हमारे शरीर में आरोग्य, बुद्धि, सज्जनों का सहाय, चतुरता और सत्यविद्या का प्रकाश सदा बढ़ता रहे। इस भद्रस्वरूप सुख को आप अपनी सामर्थ्य से हमको दीजिए, जिस कृपा के सामर्थ्य से हम लोग सत्य विद्या से युक्त जो आपके बनाए वेद हैं उनके यथार्थ अर्थ से युक्त भाष्य को सुख से विधान करें। सो यह वेदभाष्य आपकी कृपा से संपूर्ण हो के सब मनुष्यों का सदा उपकार करने वाला हो'
(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरप्रार्थनाविषय, पृष्ठ 5)

1. ईश्वर ने स्वामी जी की यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

2. उनका वेदभाष्य सुख से तो क्या दुख के साथ भी पूरा नहीं हुआ।
3. इस अनुष्ठान में लगने के बाद उन्हें आरोग्य आदि भी नहीं मिला, उल्टे ईश्वर ने उन्हें खाट पकड़ा दी और उनके प्राण ले लिए।
4. वह और उनके शिष्य स्वामी जी की मान्यतानुसार वेद के यथार्थ अर्थ का सुख से विधान न कर सके।
5. ईश्वर की कृपा न होने से उनके द्वारा वेदभाष्य संपूर्ण न हुआ। जिसकी प्रार्थना स्वामी जी ने की थी।

¤ वास्तव में वेद कब और कैसे बने?

वेद के बारे में स्वामी दयानन्द जी का विचार ग़लत सिद्ध हो जाने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के विषय में सनातनी आचार्यों का मत सही है कि सबसे पहले विश्वामित्र के अन्तःकरण में गायत्री छंद में एक मंत्र की स्फुरणा हुई। जिसे गायत्री मंत्र कहा जाता है। यह पहला काव्य था। विश्वामित्र ने यह काव्य सबसे पहले ब्रह्मा जी को सुनाया। जिनके निर्देशन में वह आदि पुष्कर तीर्थ में साधना कर रहे थे। उन्होंने इसमें अ,उ,म (ओं) और 3 व्याहृतियाँ 'भूर्भुवः स्वः' जोड़ दीं। विश्वामित्र ने आदि पुष्कर तीर्थ से लौट कर यह काव्य दूसरों को सुनाया तो उन्हें यह अच्छा लगा। दूसरे विद्वानों ने भी गायत्री छंद में मंत्र बनाना सीख लिया। इस तरह ऋचा (वेदमंत्र) की रचना का आरम्भ हुआ। ऋचा रचने वाले को ऋषि कहा गया। वेद का अर्थ ज्ञान और विचार है। जिस ऋषि को जिस विषय का ज्ञान था या जो विचार किया, उसने उसी को छंद में कहा है।

गायत्री छंद में 3 पाद होते हैं और हरेक पाद में 8 अक्षर होते हैं। इस तरह तीन पाद में कुल 24 अक्षर होते हैं। यह दूसरे मंत्रों से पहले आया और इसी के आधार पर समय के साथ ऋषियों ने मात्राएं और पद बढ़ाकर नए नए छंदों का निर्माण किया। इसलिए इसे वेदमाता भी कहा जाता है।

''अक्षरानुबंध के कारण ये अलग अलग छंद कैसे निर्माण हुए होंगे, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' यह आर्ष ऋग्मंत्र। इसके अक्षर 24 और चरण तीन। सबसे पहली यह स्तुप् अर्थात् स्तुति करने वाली ऋचा। यह कहने में त्रिचरण होने से विषम है। इसमें इसी प्रकार का अष्टाक्षरी चरण जोड़ने से चरण जोड़ने से छंद होता है अनुष्टुप्। यह दूसरे क्रमांक से निर्माण हुआ। इसका नाम ही यह सुझाता है कि यह स्तुप् के पश्चात् आया। इसके बाद निर्माण हुआ त्रिष्टुप्। अनुष्टुप् के चार चरण होने के कारण वह कहने में सम लगता है। इसी से उसके पश्चात् जो छंद बने वे प्रायः 4 चरणों के हैं। 32 अक्षर जब एक समूची कल्पना ग्रंथित करने के लिए अपर्याप्त पाये गये। तब 11 अक्षरों का एक एक चरण, ऐसे 44 अक्षरों का एक नया छंद बनाया गया। यह तीसरा छंद है, यह इसके त्रिष्टुप्, नाम में जो 'त्रि' शब्द आया है, उस पर से स्पष्ट होता है। अनुष्टुप् के चार चरणों में अष्टाक्षरी एक और चरण जोड़ें तो बनती है, पंचदा पंक्ति। इन्हीं चालीस अक्षरों का चार चरणों में विभाजन किया जावे तो होगा विराट्। इसी प्रकार से छंद बढ़ते गये और उनका विकास होता गया। गायत्री पहला छंद होते हुए भी विषमता के कारण इतना कविप्रिय नहीं हुआ। अनुष्टुप् छंद वेद वाङ्मय के पश्चात् जो संस्कृत वाङ्मय निर्माण हुआ उसमें यद्यपि आधिक्य से पाया जाता है, तथापि वैदिक छंदवाङ्मय अधिक मात्रा में त्रिष्टुप् छंद में। छंदों की यह संख्या चार चार अक्षरों से बढ़ती हुई गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, बृहती, विराट् या पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्करी, अतिशक्करी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति और अतिधृति इस अंतिम 76 अक्षरों के छंद तक गई।''

(ऋग्वेद का सूक्त विकास, पृष्ठ 13 व 14, लेखकः प्रा.ह.रा.दिवेकर, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर के लिये मोतीलाल बनारसीदास बंगलोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली-7 द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण 1970 मूल्यः24रूपये)

इस पुस्तक में 'प्रारम्भिक दो शब्द' लिखते हुए जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर के कुलपति श्री सी. शा. भांडारकर लिखते हैं-

'जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर के द्वारा, ग्वालियर के एक तपे हुए संस्कृत पंडित की यह साहित्यकृति, प्रकाश में लाते हुए, मुझे अत्यंत आनंद होता है। इसके लेखक वय, विद्या तथा ज्ञान तीनों दृष्टियों से वृद्ध व्यक्ति हैं। जिन्होंने साठ वर्षों से अधिक काल तक वेदों का प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों दृष्टियों से अभ्यास किया है और आज तक भी जिनका अभ्यास चल ही रहा है। ऐसे लेखक ने इस ग्रंथ में ऋग्वेद के 1028 सूक्तों का कालक्रमानुसार दर्शन कराया है। ...लेखक के मतानुसार सारे ही ऋग्वेद की रचना महाभारत युद्ध के पूर्व साठ पीढ़ियों में हुई है।'

बहुत से ऋषियों ने बहुत से विषयों का विचार किया और बहुत से मंत्रों की रचना की। इन सब मंत्रों को संकलित किया गया तो संहिता बन गई। इसीलिए वेद को संहिता भी कहा जाता है। यह काम वेद व्यास ने किया।

'इसने गद्य, पद्य या गान यह विभाजक लक्षण न मान तत्कालीन यज्ञ-पद्धति के अनुसार अध्वर्यु के लिए उपयुक्त मंत्र-वे गद्य रूप हों या पद्य रूप-अलग निकाले, उद्गाता के लिए आवश्यक जो भाग था-वह पाठ रूप हो या गान रूप-उसे पृथक किया और शेष जो पद्य वाङ्मय तब तक निर्मित हुआ था उसे एकत्रित किया। ये ही आज की यजुर्वेद, सामवेद तथा ऋग्वेद की संहिताएं

हैं। कृष्ण द्वैपायन-जिन्हें आगे चलकर इसी कारण वेद व्यास कहने लगे-के पश्चात इन संहिताओं पर नया संस्कार कोई नहीं हुआ।' (ऋग्वेद का सूक्त विकास, पृष्ठ 11)

'ये सारे सूक्त प्रधानतः देवों की स्तुति करने हेतु से ही निर्माण हुए। और इसीलिए 'या तेनोच्यते सा देवता' यह लक्षण रूढ़ हुआ। ये वैदिक देव भी अनेक हैं। ...प्रथम सूर्य, अग्नि, वायु इत्यादि प्रकृतिस्थ शक्तियां ही देवता मानी गईं और उनका यजन होने लगा। बाद में मनुष्यों के ही पराक्रमी, शत्रुनाशक, लोकोपालक राजा की सदृशता से देवराज इंद्र की कल्पना आई होगी। विचार वृद्धि के साथ नैतिक कल्पनाओं के आधार पर मित्र, वरूण इत्यादि देवताओं की निर्मिति हुई और उसी समय घोड़े पर चढ़ दौड़कर आने वाले दो लोकोपकारक वीर भाइयों ने 'अश्विनौ' इस जुगलबंद दो देवों की कल्पना निर्माण की होगी। इस द्वन्दात्मक कल्पना का ही विकास अग्निषोमौ, इंद्राग्नी, इंद्रवायू, मित्रावरूणौ इत्यादि द्वन्द्वों में दिखता है। इंद्र के साथ उसके सहायक मरूत् भी कल्पे गये और अपने कृत्यों से देवता को प्राप्त करने वाले जो ऋभु उनकी भी कल्पना आई और इन सब पर सूक्त रचना हुई। काव्यों के विषय भी बढ़ते गये और ऊपर लिखा हुआ 'देवता लक्षण' प्रयुक्त किया जाकर उन सारे विषयों को देवत्व की प्राप्ति हुई। घोड़े, गोएं, अरण्य इत्यादि भी देवताओं में समाविष्ट किये गये। अंत में विश्वेदेव-सारे देव-जिन-जिन की हम कल्पना कर सकते हैं, उन पर भी सूक्त लिखे गये। इस देवता विकास का भी सूक्तों का कालानुक्रम निश्चित करने में उपयोग किया गया है।' (ऋग्वेद का सूक्त विकास, पृष्ठ 14-15)

सूक्त के आरम्भ में एक अनुक्रमणी भी होती है। जिसे शायद वेद व्यास ने ही बनाया है। इस अनुक्रमणी में यह लिखा रहता है कि इस सूक्त का ऋषि कौन है?, देवता कौन है ? और यह किस छंद में है?

कुछ मंत्रों के अंदर भी सूक्त रचने वाले ऋषि ने अपने नाम का वर्णन किया है। जैसे कि ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 40वें सूक्त के आरम्भ में लिखा है-

ऋषि-घोषा काक्षीवती, देवता-अश्विनी, छंद-जगती

इस सूक्त के 5वें मंत्र में ऋषि घोषा ने अपने नाम का उच्चारण करते हुए कहा है-

'युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वों नरा

भूतं में अह्न उत भूतमक्तवेऽवेश्वावते रथिनेशक्तमर्वते।5।

हे अश्विनी कुमारो! मैं राजकुमारी घोषा सब ओर घूमती हुई तुम्हारा गुणानुवाच करती हूँ और तुम्हारा ही चिन्तन करती रहती हूँ। तुम दिन रात मेरे यहाँ निवास करते हुए रथ और अश्वों से सम्पन्न मेरे भ्राता के पुत्र को वश में रखते हो।' (अनुवादःपं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशकःसंस्कृति संस्थान, ख़्वाजा क़ुतुब नगर, बरेली, उ.प्र.)

ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 99वें सूक्त का ऋषि वभ्रो वैखानसः, देवता इन्द्र और छन्द त्रिष्टुपू है। इसके 12वें मंत्र में सूक्त बनाने वाला वभ्र भी अपने नाम का उल्लेख करते हुए कहता है-

'हे इन्द्र! अनेक हवियाँ देने की कामना करता हुआ मैं वभ्र तुम्हारी सेवा में पैदल चलकर आया हूँ, तुम मेरा कल्याण करो तथा श्रेष्ठ अन्न, सुन्दर गृह, सब पदार्थ और बल आदि मुझे दो। (अनुवादःपं. श्रीराम शर्मा आचार्य)

इसी मण्डल का 100वाँ सूक्त दुवस्युर्वान्दन ने बनाकर उसके अंतिम मंत्र संख्या 12 में कहा है-'दुवस्यु ऋषियों की रस्सी का अगला भाग आपकी कृपा से ही खींचते हैं।' (अनुवादःपं. श्रीराम शर्मा आचार्य)

ऋग्वेद का यम-यमी संवाद भी यही सिद्ध करता है कि वेदमंत्रों की रचना मनुष्यों ने की है। ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 10वें सूक्त के ऋषि यमी वैवस्ती और यमो वैवस्वतः हैं और इस सूक्त के देवता अर्थात प्रतिपाद्य विषय भी यही दोनों हैं। ये आपस में भाई बहन हैं। इन दोनों ने आपस में जो बातचीत की है, वही इस सूक्त में वर्णित है। सूक्त के अंदर भी यम-यमी ने एक दूसरे को नाम लेकर संबोधित किया है।

¤ वेदों में नए नए मंत्र

'इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि समयसमय पर वेदों के नए नए मंत्र बनते रहे हैं और वे पहले बने संग्रहों (संहिताओं अथवा वेदों) में मिलाए जाते रहे हैं। खुद वेदों में ही इस बात के प्रमाण मिल जाते हैं, यथाः

अथा सोमस्य प्रयतीयुवम्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्. -1,109,2

अर्थात हे इंद्र और अग्नि, तुम्हारे सोमप्रदानकाल में पठनीय एक नया स्तोत्र रचता हूं.

स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः -ऋग्वेद 1,130,10

अर्थात जलवर्षक और नगर विदारक इंद्र, हमारे नए मंत्र (स्तोत्र) से संतुष्ट हो कर विविध प्रकार से रक्षा और सुख देते हुए हमें प्रतिपालित करो.

तदस्मै नव्यमंगिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते -ऋग्वेद 2,17,1

अर्थात हे स्तोताओ, तुम लोग अंगिरा के वंशजों की तरह नई स्तुति द्वारा इंद्र की उपासना करो.

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया -ऋग्वेद 4,16,21

अर्थात हे हरि विशिष्ट इंद्र हम तुम्हारे लिए नए स्तोत्र बनाते हैं.

यही शब्द अविकल रूप से 4/17/21; 4/19/11; 4/20/11; 4/21/11; 4/22/11; 4/23/11 और 4/24/11 में भी मिलते हैं।'

इस तरह के और भी कई मंत्र हैं जिनका उल्लेख करते हुए प्रख्यात वेद मनीषी डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा अज्ञात लिखते हैं-

''स्पष्ट है कि इन स्तोत्रों व मंत्रों के रचयिता साधारण मानव थे, जिन्होंने पूर्वजों द्वारा रचे गए मंत्रों के खो जाने पर या उन के अप्रभावी सिद्ध होने पर या उन्हें परिष्कृत करने या अपनी नई रचना रचने के उद्देश्य से समयसमय पर नए मंत्र रचे. अपनी मौलिकता व अपने प्रयत्नों का विशेष उल्लेख अपनी रचनाओं में कर के उन्होंने अपने को देवता विशेष के अनुग्रह को प्राप्त करने के विशिष्ट पात्र बनाना चाहा है, अन्यथा, वे 'अपने नए रचे स्तोत्रों'-इस वाक्यांश का प्रयोग, शायद, न करते.''
(क्या बालू की भीत पर खड़ा है हिन्दू धर्म?, पृष्ठ 464 व 465)

¤ वेदों में प्राचीन व नवीन ऋषियों के मंत्र संकलित हैं

ये च ऋषयो य च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।

अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।9।।

हे इन्द्रदेव! प्राचीन एवं नवीन ऋषियों द्वारा रचे गए स्तोत्रों से स्तुत्य होकर आपने जिस प्रकार उनका कल्याण किया, वैसे ही हम स्तोताओं का भी मित्रवत् कल्याण करें। आप कृपा करके कल्याणकारी साधनों से हम सबकी सुरक्षा करें।
(ऋग्वेद 7/22/9; अनुवादः पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, मथुरा से प्रकाशित, सन् 2005 ई.)

'प्राचीन एवं नवीन ऋषियों द्वारा रचे गए स्तोत्रों' कहकर वेदों ने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है कि वेदमंत्रों की रचना ऋषियों ने की और यह काम कई पीढ़ियों तक चलता रहा।

स्वामी दयानन्द जी ने वेदों को स्वतःप्रमाण माना है और वेद स्वयं को ऋषियों की रचना बता रहे हैं। दिलचस्प तथ्य यह है कि वेद का यह अनुवाद एक ऐसे महापंडित ने किया है, जो बहुत वर्षों तक आर्यसमाज का प्रतिनिधित्व करते रहे लेकिन जब उन्होंने स्वयं वेद का अनुवाद किया तो उन्होंने स्वामी जी की ग़लत मान्यताओं का अनुकरण न किया।

¤ वेदमंत्रों की रचना ऋषियों ने की

तैत्तिरीय ब्राह्मण भी वेद के सत्यवचन को प्रमाणित करते हुए कहता है-

यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः

मन्त्र की रचना मनीषी ऋषियों ने की। (तै.ब्रा. 2/8/8/5)

¤ ऋषियों के इतिहास की जानकारी आवश्यक है

सच्चा वेदार्थ जानने के लिए वेदमंत्रों की रचना करने वाले 'कवि' ऋषियों के इतिहास की जानकारी आवश्यक है। आज भी किसी कविता का सही अर्थ जानने के लिए उसके रचने वाले कवि के जीवन की घटनाओं के बारे में जानना ज़रूरी माना जाता है। कवि जिन घटनाओं को देखता है या जो अनुभूत करता है, अपने काव्य में उन्हीं का वर्णन करता है। वेदमंत्रों में विश्वामित्र, वसिष्ठ, घोषा काक्षीवती, वभ्र, दुवस्यु और यम-यमी आदि जिन कवियों के नाम आए हैं। उनके जीवन का इतिहास जाने बिना उनके काव्य का सही अर्थ जानना संभव नहीं है।

स्वामी दयानन्द जी को इन ऋषियों के प्राचीन इतिहास के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी न थी। उनके द्वारा वेदार्थ में ग़लती करने का यह एक बड़ा कारण है।

¤ राजाओं के इतिहास की जानकारी भी ग़लत

स्वामी जी को ऋषियों के प्राचीन इतिहास की तो क्या आर्य राजाओं के नवीन इतिहास की भी सही जानकारी नहीं थी। उन्होंने सुल्तान शहाबुद्दीन ग़ौरी का राजा यशपाल से लड़कर दिल्ली पर राज्य करना बताया है और पृथ्वीराज चौहान के राज्य को इस युद्ध से 74 वर्ष पहले ही समाप्त दिखाया है। देखिए उनकी बनाई तालिका और उनकी टिप्पणी-

आर्य राजा	वर्ष	मास	दिन
1 पृथिवीराज	12	2	19
2 अभयपाल	14	5	17
3 दुर्जनपाल	11	4	14
4 उदयपाल	11	7	3
5 यशपाल	36	4	27

'राजा यशपाल के ऊपर सुल्तान शाहबुद्दीन गौरी गढ़ गजनी से चढ़ाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किले में संवत् 1249 साल में पकड़ कर कैद किया। पश्चात् 'इन्द्रप्रस्थ' अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुल्तान शाहबुद्दीन) करने लगा।' (सत्यार्थप्रकाश, एकादशमसमुल्लास, पृ.274)

¤ सब्ज़ियां खाने से जीव को पीड़ा नहीं होती?

''...हरित 'शाक के खाने में जीव का मारना उनको पीड़ा पहुंचनी क्योंकर मानते हो? भला जब तुमको पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दिखती और जो दिखती तो हमको दिखलाओ।'' (सत्यार्थप्रकाश, द्वादशमसमुल्लास, पृष्ठ 369)

(30) आज पहली क्लास का बच्चा भी जानता है कि पेड़-पौधों पर अनगिनत सूक्ष्म जीवाणु वास करते हैं और खुद पेड़-पौधे भी जीवित वस्तुओं (Living things) में आते हैं। सब्ज़ी खाने से उन पर निवास करने वाले जीव मरते हैं। यह एक सच्चाई है। खाने के लिए गाजर-मूली को ज़मीन से खोद कर निकाला जाता है। तब वे भी मर जाती हैं और उन्हें पीड़ा भी होती है। इस वैज्ञानिक सत्य को झुठलाना ज्ञान कहा जायेगा अथवा अज्ञान?

स्वामी जी ने मनुष्य और पशु आदि में जीव एक ही माना है। (सत्यार्थप्रकाश, नवम., पृ.170)

अतः आवागमन की मान्यता के अनुसार जो सब्ज़ियाँ और छोटे बड़े अब जीव नज़र आ रहे हैं, ये सब पहले कभी मनुष्य हुआ करते थे। वे मनुष्य ही मर कर अपने पाप भुगतने के लिए इन योनियों में पैदा हो गए हैं। केवल रूप रंग बदला है, इनमें आत्मा वही माननी पड़ेगी। ऐसे में यह डर बना रहता है कि जिस आलू को हम छील रहे हैं, कहीं यह हमारे माता-पिता ही न हों?

हमारे माता पिता न भी हों तब भी वे किसी न किसी मनुष्य के माता पिता या बच्चे तो हैं ही, यह निश्चित है। आवागमन को माना जाए तो शाकाहारी भी आदमख़ोर ठहरते हैं। इस अपराध बोध से आदमी तभी बच सकता है, जबकि वह आवागमन को असत्य मान ले।

¤ आवागमन कैसे संभव है?

इनसान के लिए यह जानना बेहद ज़रूरी है कि मरने के बाद जीवात्मा के साथ क्या होता है? यही बात इन्सान को बुरे कामों से बचकर नेक काम करने की प्रेरणा देती है। प्रत्येक को अपने शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगना है लेकिन किस दशा में?

वैदिक धर्म में स्वर्ग-नर्क की मान्यता पाई जाती है। बाद में आवगमन की कल्पना प्रचलित की गई। स्वामी जी ने स्वर्ग-नर्क को अलंकार बताया और आवगमन की कल्पना का प्रचार किया। उन्होंने बताया कि मोक्ष प्राप्त आत्मा भी एक निश्चित अवधि तक मुक्ति-सुख भोगने के बाद जन्म लेती है और पापी मनुष्यों की आत्माएं भी कर्मानुसार अलग-अलग योनियों में जन्म लेती हैं।

आवागमन की कल्पना सिर्फ इस अटकल पर खड़ी है कि सब बच्चे बचपन में एक जैसे नहीं होते। कोई राजसी शान से पलता है और कोई ग़रीबी, भूख और बीमारी का शिकार हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्या ईश्वर अन्यायी है, जो बिना

कारण ही किसी को आराम और किसी को कष्ट देता है? क्योंकि ईश्वर न्यायकारी है इसलिए इनके हालात में अन्तर का कारण भी इनके ही कर्मों को होना चाहिए और क्योंकि इनके वर्तमान जन्म में ऐसे कर्म दिखाई नहीं देते तो ज़रुर इस जन्म से पहले कोई जन्म रहा होगा। यह सिर्फ एक अटकल है हक़ीक़त नहीं।

एक मनुष्य जब कोई पाप या पुण्य का कर्म करता है तो उसके हरेक कर्म का प्रभाव अलग-अलग पड़ता है और उसके कर्म से प्रभावित होकर दूसरे बहुत से लोग भी पाप पुण्य करते हैं और फिर उनका प्रभाव भी दूसरों पर और भविष्य की नस्लों पर पड़ता है। यह सिलसिला प्रलय तक जारी रहेगा। इसलिये प्रलय से पहले किसी मनुष्य के कर्म के पूरे प्रभाव का आकलन संभव नहीं है। लोगों को प्रलय से पहले उनके कर्मों का बदला देना सम्भव नहीं है और यदि उन्हें बदला दिया जाता है तो किसी एक के साथ भी न्याय न हो पाएगा।

फिर भी अगर मान लिया जाए कि एक पापी मनुष्य को उसके पापों की सज़ा भुगतने के लिए पशु-पक्षी आदि बना दिया जाता है तो जब उसकी सज़ा पूरी हो जायेगी तो उसे किस योनि में जन्म दिया जाएगा? क्योंकि मनुष्य योनि तो बड़े पुण्य के फलस्वरूप मिलती है। इसलिए मनुष्य योनि में जन्म संभव नहीं है और पशु-पक्षी आदि की योनियों मे उसे भेजना भी न्यायोचित नहीं है क्योंकि वह अपने पापकर्मों की पूरी सज़ा भुगत चुका है।

(32) मोक्ष प्राप्त आत्मा के जन्म के विषय में भी यही प्रश्न उठता है। एक निश्चित अवधि तक मुक्ति सुख भोगने के बाद मोक्ष प्राप्त आत्मा जन्म लेती है, लेकिन प्रश्न यह है कि किस योनि में लेती है?

(33) पाप उसने किया नहीं था और पुण्य का फल भी उसके पास अब शेष नहीं था। नियमानुसार ईश्वर उसे न तो पशु-पक्षी बना सकता है और न ही मनुष्य। क्या न्यायकारी परमेश्वर जीव को बिना किसी कर्म के पशु-पक्षी या मनुष्य योनि में जन्म दे सकता है?

(34) यदि यह मान भी लिया जाये कि दोनों को नई शुरूआत मनुष्य योनि से कराई जाएगी तो फिर बचपन में जब वे भूख, प्यास और मौसम आदि के स्वाभाविक कष्ट झेलेंगे तो इन कष्टों के पीछे क्या कारण माना जाएगा?, क्योंकि पाप तो दोनों के ही शून्य हैं।

इस तरह आवागमन की कल्पना से जिस समस्या का समाधान निकालने की कोशिश की गई। वह समस्या तो ज्यों की त्यों रही और वास्तव में मरने के बाद पाप पुण्य का फल जिस तरीक़े से मिलता है, उसे न जानने के कारण जीव को बहुत सा कष्ट उठाना पड़ता है।

¤ क्या दुखी मनुष्य पिछले जन्म का पापी है?

दुनिया ईश्वर की पाठशाला है। जहां वह मनुष्यों का शिक्षण और प्रशिक्षण विभिन्न माध्यमों से स्वयं कर रहा है। वह मनुष्यों का परीक्षण भी करता है और उन्हें दुनिया में सज़ा और ईनाम भी देता है। परलोक में वह अपने न्याय को पूर्ण करेगा।

शिक्षण-प्रशिक्षण और परीक्षण में विद्यार्थियों को कष्ट होता ही है। यह स्वाभाविक है। जो विद्यार्थी अच्छे होते हैं। वे नियमों का पालन करके शिक्षा ग्रहण करते हैं और कठिन परीक्षा देते हैं और सफल होते हैं। उन्हें भी कष्ट होता है और जो नियमों का उल्लंघन करते हैं और परीक्षा में फ़ेल हो जाते हैं। उन बुरे विद्यार्थियों को भी कष्ट होता है। दुख और कष्ट सबको होता है लेकिन दोनों के कष्ट का कारण अलग अलग होता है। दुनिया में भी अच्छे और बुरे हरेक आदमी को कष्ट होता है लेकिन आवागमन के कारण अच्छे आदमी को कष्ट उठाता देखकर उसे भी बुरा समझ लिया जाता है।

दुनिया में एक अच्छा आदमी बुरे लोगों के ख़िलाफ़ संघर्ष करता है। बुरे लोग उसकी हत्या कर देते हैं। आवागमन को मानने वाले उसके बारे में यह सोचने लगते हैं कि यह बहुत बुरी मौत मरा है। इसके पिछले जन्म के पाप इसके सामने आ गए। ज़रूर इसने पिछले जन्म में इन लोगों की हत्या की होगी, जिन्होंने इस जन्म में इसे क़त्ल किया है। लोगों के सामने यह सुधारक होने का ढोंग कर रहा था लेकिन ईश्वर ने न्याय करके इसकी असलियत सबके सामने खोल दी।

(35) क्या लोगों का ऐसा सोचना सही कहलाएगा ?

आवागमन को मानने वाले दो बड़े वैदिक गुरू आदि-शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द जी को ज़हर देकर मार डाला गया। बड़ा भयानक कष्ट उठाने के बाद उनके प्राण निकले।

(36) ज़रा सोचिए कि अगर आवागमन के आधार पर ईश्वर के न्याय को समझने की कोशिश जाए तो उनके बारे में क्या राय बनेगी ?

...और अगर समाज में यह ग़लत धारणा आम हो जाए तो सब एक दूसरे को कितनी बुरी नज़रों से देखेंगे बल्कि अच्छे

आदमी ख़ुद अपनी नज़र में भी गिर जाएंगे और अपनी नज़र से गिरे हुए को कौन उठा सकता है ?

¤ आवागमन को मानना महापाप क्यों है?

किसी किसान का चारा काटते हुए हाथ कट जाता है और कोई ईमानदारी से पेट पालने वाला मज़दूर दीवार से गिरकर हड्डी तुड़वा बैठता है। कोयले की खदानों में काम करने वाले हज़ारों मज़दूरों को ज़हरीली गैसें अपाहिज बना देती हैं या मार ही देती हैं। सियाचिन की पहाड़ियों पर जहां तापमान शून्य से कम होता है। वहां सरहदों की हिफ़ाज़त करने वाले हमारे बहादुर फ़ौजियों के हाथ पैर गल जाते हैं। कितनी ही लड़कियां गर्भ में मार दी जाती हैं। कितनी ही पैदा होकर बचपन या जवानी में किसी की हवस का शिकार हो जाती हैं और क़त्ल भी कर दी जाती हैं। कितनी ही दहेज न होने के कारण बिन ब्याही रह जाती हैं। कितनी ही दहेज कम लाने के कारण मार दी जाती हैं या घरों से निकाल दी जाती हैं। कितनी ही औरतें बच्चों को जन्म देते समय मर जाती हैं या किसी डाक्टर की लापरवाही का शिकार होकर जीवन भर के लिए अपाहिज बन जाती हैं। प्रसव पीड़ा का कष्ट तो ये सब उठाती ही हैं।

आवागमन को मानने वाले उनके बारे में यही सोचते हैं कि पिछले जन्म के बुरे कर्म इस रूप में इनके सामन आ रहे हैं। वे स्वयं भी अपने बारे में यही सोचते हैं। समाज के लोग उन्हें मुंह पर तो कुछ नहीं कहते लेकिन उनकी पीठ पीछे उन्हें धिक्कारते रहते हैं। वे ख़ुद अपने आप को धिक्कारते रहते हैं, बिल्कुल बेवजह। सब एक दूसरे की नज़र से और ख़ुद अपनी नज़र से भी गिर जाते हैं। किसी को सबकी नज़रों से और ख़ुद उसकी नज़रों में भी गिरा देना एक महापाप है। आवागमन को मानकर लोग यही पाप करते हैं। इसलिए आवागमन को मानना महापाप है।

¤ ...क्योंकि हरेक बच्चा मासूम और निष्पाप है

माँ-बाप या डाक्टर की लापरवाही के कारण जो बच्चे अपाहिज पैदा होते हैं। उन मासूम बच्चों को भी पिछले जन्म का पापी मान लिया जाता है। मासूम विकलांग बच्चों को पापी ठहराना मानवता के प्रति सबसे घृणित अपराध है। ऐसा केवल इसलाम कहता है। इसलाम के अनुसार हरेक बच्चा मासूम और निष्पाप है।

आवागमन की मान्यता पर विश्वास करने का दण्ड इसी दुनिया में तुरंत मिलता है और वह इस रूप में मिलता है कि ऐसे आदमी को उसका समाज और अपने आप को वह स्वयं भी धिक्कारता रहता है। वह जीता है लेकिन समाज की और ख़ुद की नज़रों में गिर कर। आवागमन को मानने के बाद ज़िल्लत की यह ज़िन्दगी नसीब होती है।

इस ज़िल्लत से छुटकारा केवल इसलाम दिलाता है।

¤ जीवन के उद्‌देश्य से भटका देता है आवागमन

आवागमन को मानने के बाद जीवन का उद्‌देश्य भी बदल जाता है। आवागमन को मानने वाले वैदिक गुरू बताते हैं कि जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि आवागमन से मुक्ति पाना है। मुक्ति पाने के लिए वे धर्म के पालन पर ज़ोर देते हैं। धर्म का उन्हें पता नहीं है। ऐसे में वे धर्म यह बताते हैं कि इनसान और इनसान में भेदभाव करो। किसी को ऊँचा समझो और किसी को नीचा समझो। छूतछात को मानो। औरत विधवा हो जाय तो उसका पुनर्विवाह न करो। उसका नियोग कराओ। अगर परिस्थितिवश किसी औरत को दासी बनना पड़ जाए तो उसकी संतान पर उन्नति का द्वार सदा के लिए बंद कर दो। चाहे कोई पुरूष उस दासी से विवाह करके ही पुत्र पैदा करे लेकिन तब भी उसके पुत्र को दासी पुत्र समझो और उसे मंत्री न बनाओ। हज़ारों साल बाद भी उस औरत के वंश में पैदा होने वाले बच्चों को दासी पुत्र समझो और उनमें से भी किसी को अपना मंत्री न बनाओ।

आवागमन से मुक्ति के लिए ये सब काम सनातनी पंडित भी बताते रहे और स्वामी दयानंद जी ने भी यही काम बताए हैं। सबसे बुरी बात यह हुई कि ये काम धर्म कहकर बताए गए। जबकि ये अधर्म के काम थे। इनके विपरीत करना धर्म है। इसलाम यही कहता है। इसलाम को अपने दर्शन के विपरीत पाकर ऊँचनीच, छूतछात और जातिवाद को बढ़ावा देने वाला पुरोहित वर्ग इसलाम के ख़िलाफ़ हो गया। स्वामी जी ने भी इसी कारण इसलाम का विरोध किया।

¤ आवागमनः एक बड़ा धंधा

आवागमन से मुक्ति का मार्ग बताने वाले समाज में गुरू कहलाते हैं और उनके चेले उन्हें बड़ा सम्मान देते हैं। उनके चेले उन्हें मान-सम्मान के साथ धन-संपत्ति भी देते हैं। कोई उस धन को आवागमन के प्रचार में लगा देता है और कोई उसे अपने ऐशो आराम में खपा देता है। दोनों ही हालतों में गुरूओं को सम्मान मिलता है और उनके चेलों को बर्बादी के सिवा कुछ भी

नहीं।

अगर लोगों को पता चल जाए कि आवागमन होता ही नहीं है तो वे इनकी सेवा-टहल करना बंद कर देंगे और इनकी चौधराहट ख़त्म हो जाएगी। अपने प्रभुत्व की रक्षा के लिए ही वे अपने चेलों को इसलाम के ख़िलाफ़ भड़काते हैं। इसलाम के ख़िलाफ़ रचे गए सारे अज्ञानपूर्ण साहित्य के पीछे यही कारण है।

¤ इसलाम आवागमन से मुक्ति तुरंत देता है

इसलाम कहता है कि मनुष्य की आत्मा का कर्मानुसार इस दुनिया में बारम्बार आवागमन नहीं होता। इसलिए आवागमन से मुक्ति पाना मनुष्य के जीवन का उददेश्य नहीं है बल्कि जब तक मनुष्य आवागमन के भ्रम से न बचे तब तक वह अपने जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं कर सकता। इसलाम इनसान को आवागमन की मान्यता से ही मुक्त कर देता है। इससे मनुष्य को तुरंत शांति मिलती है। आवागमन की मान्यता को नकारते ही उसे ऊँच-नीच, छूतछात और पुनर्विवाह पर पाबंदी जैसी समस्याओं से भी मुक्ति मिल जाती है। अब मनुष्य खुलकर योग्यता अर्जित कर सकता है और वह अपनी योग्यता के अनुसार समाज को अपनी सेवाएं भी दे सकता है।

¤ समर्पण और आज्ञापालनः जीवन का वास्तविक उद्देश्य

इसलाम के अनुसार ऊँच-नीच और छूतछात मानना ज़ुल्म है। विधवाएं पुनर्विवाह कर सकती हैं और दासीपुत्र भी मंत्री बन सकता है। यही ईश्वर की आज्ञा है। ईश्वर की आज्ञा का पालन करना ही मनुष्य मात्र का धर्म है। उसकी आज्ञा का पालन करने वाले स्वर्ग में जाएंगे और उसकी आज्ञा न मानने वाले नर्क में जाएंगे।

परमेश्वर ने अपने सामने पूर्ण समर्पण करने और मनुष्य को अपनी आज्ञा-पालन का प्रशिक्षण देने के लिए ही यह सृष्टि बनाई है। मनुष्य जन्म का वास्तविक उद्देश्य यही है।

¤ आवागमनः अज्ञानी की मूल पहचान

'परलोक में स्वर्ग नर्क है।' यह सत्य है जिसे धार्मिक जन सदा से मानते आये हैं। आवागमन एक मिथ्या कल्पना है जिसे वेदों के बाद उपनिषद काल में दार्शनिकों ने अपने मन से गढ़ा था। 'पुनर्जन्म' का अर्थ है 'दूसरी बार जन्म होना' जो कि परलोक से सम्बन्धित है और सत्य है। जबकि आवागमन इसी दुनिया में बारम्बार जन्म लेने की वेदविरुद्ध और झूठी मान्यता का नाम है। इसके समर्थन में वेदों में कोई एक भी सूक्त अथवा अध्याय नहीं पाया जाता। धार्मिक और दार्शनिक, दोनों व्यक्तियों के बीच सच और झूठ का अन्तर स्पष्ट करने वाला यह प्रमुख लक्षण है। वेदों के जिन मंत्रों में परलोक में पुनर्जन्म होने की बात कही गई है, उन मंत्रों को आवागमन के समर्थन में पेश कर दिया जाता है। जब से धर्म का ज्ञान न रहा, तब से दार्शनिक यह धोखा खाते भी आ रहे हैं और दूसरों को देते भी आ रहे हैं।

किसी व्यक्ति को उसका जुर्म बताए बिना और उसे अपनी सफ़ाई का मौक़ा दिए बिना सज़ा देना 'प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त' के ख़िलाफ़ है। ऐसा करना ज़ुल्म है और ईश्वर ज़ालिम नहीं है। जो ऐसा मानते हैं वे अज्ञान के कारण ईश्वर पर आरोप लगाते हैं।

यह वेदों के साथ सरासर अन्याय है कि नाम वेदों का लिया जाता है लेकिन पेश दर्शन को किया जाता है। इस मामले में अद्वैतवादी सनातनी और त्रैतवादी आर्य दोनों समान हैं। दर्शन की ग़लतियां खुलने से लोगों का विश्वास धर्म से भी उठ जाता है। अतः यह रीति उचित नहीं है।

¤ क्या मुक्ति संभव है?

जब आवागमन होता ही नहीं है तो फिर उससे मुक्ति भी संभव नहीं है। जिन्होंने आवागमन को माना है, उन्होंने उससे मुक्ति के लिए इतना कठिन नियम बताया है कि उसे वे खुद भी पूरा न कर सके। उन्होंने आवागमन को माना, जो कि असंभव है। फिर उन्होंने उससे मुक्ति को भी असंभव बना दिया।

यदि मुक्ति के लिए पूरे जीवन में पाप न करना अनिवार्य नियम है तो फिर किसी मनुष्य को मुक्ति मिलना संभव नहीं है। किसी और को मुक्ति क्या मिलेगी जबकि इस नियम की कल्पना करने वाले खुद स्वामी जी को ही मुक्ति मिलना संभव नहीं है। हालांकि उनका दावा था कि मैं संसार को क़ैद कराने नहीं, क़ैद से छुड़ाने आया हूँ लेकिन जो खुद ही मुक्ति न पा सका हो वह दूसरे को कैसे मुक्ति दिला सकता है? इससे पता चलता है कि उनके दावों में कोई सच्चाई नहीं थी।

(37) जब महर्षि के स्तर के आदमी को ही मुक्ति न मिल पाए तो क्या बेचारे साधारण जीवों को मुक्ति की उम्मीद करना व्यर्थ नहीं है?

लोगों को क्षमा और मुक्ति से निराश करने का परिणाम यह हुआ कि लोगों की दिलचस्पी दयानन्दी दर्शन में कम हो गई और आर्य समाज मन्दिर रविवार को भी सूने से रहने लगे। लोग इधर-उधर उम्मीद की किरण ढूंढने लगे। यहाँ तक कि खुद आर्य समाज के सभासदों की पत्नियाँ और बच्चे भी मूर्ति-पूजक, वेदान्ती और अन्य मत वाले हो गए।

¤ क्या 'नियोग' की व्यवस्था ईश्वर ने दी है?

स्वामी दयानंद जी ने स्त्री शिक्षा पर बल देकर औरत का कुछ भला ज़रूर किया है लेकिन विधवा औरत और विधुर मर्द को अपने जीवन साथी की मौत के बाद पुनर्विवाह करने से वेदों के आधार पर रोक दिया है और बिना दोबारा विवाह किये ही दोनों को 'नियोग' द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की व्यवस्था दी है।

'द्विजों में स्त्री और पुरूष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय वार नहीं।'

(सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ., पृ. 76)

इस सम्बंध में सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थसमुल्लास में पृष्ठ संख्या 73 से 81 तक पूरे 9 पृष्ठों में वेदमन्त्रों सहित पूर्ण विवरण दिया गया है। स्वामीजी के अनुसार एक विधवा स्त्री बच्चे पैदा करने के लिए वेदानुसार दस पुरूषों के साथ 'नियोग' कर सकती है और ऐसे ही एक विधुर मर्द भी दस स्त्रियों के साथ 'नियोग' कर सकता है। बल्कि यदि पति बच्चा पैदा करने के लायक न हो तो पत्नि अपने पति की अनुमति से उसके जीते जी भी अन्य पुरूष से 'नियोग' कर सकती है। स्वामी जी को इसमें कोई पाप नजर नहीं आता।

(38) क्या वाक़ई ईश्वर ऐसी व्यवस्था देगा जिसे मानने के लिए खुद वेद प्रचारक ही तैयार नहीं हैं?

जंगली क़बीलों से लेकर उन्नत देशों तक, जिनके पास ईश्वरीय विधान नहीं है। उन्होंने भी जब अपनी अक्ल से विधवाओं की समस्या को हल करना चाहा तो पुनर्विवाह को ही विधवा समस्या का सही हल पाया लेकिन ईश्वर को विधवा का पुनर्विवाह उचित नहीं लगा और उसने नियोग का उपदेश दिया और स्वामी जी के अनुसार 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 52 हज़ार 9 सौ वर्ष तक बुद्धिमान आर्य नर-नारी नियोग करते रहे? यह सोच कर ताज्जुब होता है।

इसलाम में विधवा विवाह को ईश्वर का आदेश माना जाता है। मुसलमान इस देश में आए तो आर्यों ने उन्हें विधवा का पुनर्विवाह करते देखा। तब उन्होंने नियोग छोड़कर विधवा विवाह करना शुरू किया। ऐसा करने के लिए आर्यों को अपने धर्म (?) के विरूद्ध जाना पड़ा।

किसी समाज में नियोग का प्रचलन केवल तभी संभव है जबकि उसमें धर्म से हीन व्यक्ति प्रभावी हो जाएं और वे उसके क़ायदे-क़ानून बनाने लगें। यही लोग समाज की सही-ग़लत की समझ को विकृत करते हैं। जब ऐसे व्यक्ति राजनीति और प्रशासन में हावी हो जाते हैं तो आम लोग सहज ही उनका अनुकरण करने लगते हैं। किसी ऐसे ही राजा के दबाव में नियोग का प्रचलन हुआ होगा। जिसे बाद के लोगों ने उनकी परम्परा में देख कर धर्म समझ लिया और उसे स्मृति आदि ग्रन्थों में लिख दिया। यह एक तथ्य है कि पूर्वजों की सभी परम्पराएं धर्म के अनुसार नहीं होतीं। जैसे कि मूर्ति पूजा भी पूर्वजों की परम्परा है लेकिन वह धर्म सम्मत नहीं है।

मनुस्मृति स्वयं कहती है कि नियोग की परम्परा राजा वेन ने चलाई थी। वैदिक विद्वानों ने इसकी निन्दा की है-

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।

मनुष्याणामापि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति।।

विज्ञ विप्रों द्वारा इस पशुधर्म की निन्दा की गई है, यह पशुधर्म राजा वेन के शासन काल से चला है।

(मनु स्मृति, 9/66, डा. चमनलाल गौतम)

यह श्लोक बता रहा है कि नियोग ईश्वर के उपदेश से नहीं बल्कि राजा वेन के आदेश से चला है। स्वामी जी ने इस श्लोक को मनु स्मृति में क्षेपक समझकर नज़रअन्दाज़ कर दिया। वर्ण व्यवस्था की ऊँचनीच और छूतछात भी ऐसे ही किसी निरंकुश राजा की देन है।

स्वामी जी ने वैदिक जाति के इतिहासग्रन्थ महाभारत आदि देखे तो उसमें उन्हें नियोग करने वाले आर्य तो बहुत मिले जबकि किसी विधवा से विवाह करने वाला कोई एक भी न मिला। उन्हें मनु स्मृति (अध्याय 9) में विधवा विवाह का विरोध और नियोग का समर्थन मिला। उन्होंने समझा कि नियोग ही धर्म है। इसीलिए जिन वेदमंत्रों को वह पुनर्विवाह के अर्थ में ले सकते थे, उनसे भी उन्होंने नियोग सिद्ध करने की कोशिश की है। जबकि उनमें कहीं भी स्पष्ट रूप से नियोग शब्द नहीं है। इसी ग़लतफ़हमी के चलते उन्होंने नियोग को ईश्वर का आदेश समझ लिया और विधवा के पुनर्विवाह को पाप तथा उसके नियोग को

पुण्य घोषित करने की बड़ी भारी ग़लती की।

इससे सिद्ध होता है कि वेदों को समझने और स्मृतियों के परिमार्जन के लिए केवल तर्क और अनुमान काफ़ी नहीं हैं।

¤ आर्य लोगों की दुर्दशा कैसे राजाओं के कारण हुई?

स्वामी जी ने भारत के राजाओं को देशवासियों की दुर्दशा का कारण बताया है। उन्होंने उनकी दशा का चित्रण एक कहानी के रूप में किया है-

'एक दिन बम्बई में कई हज़ार के समूह में व्याख्यान देते समय राजाओं के विनाश का वर्णन करते हुए कहा कि आजकल राजाओं के विनाश का कारण यह है कि उनके परामर्शदाता इस प्रकार के होते हैं, प्रथम ज्योतिषी, दूसरे तेल वाला, तीसरा ऊंट वाला, चौथा हीजड़ा। किसी एक राजा पर जब शत्रु चढ़कर आया और दुर्ग के भीतर घुसने लगा तो उसे सूचना मिली। प्रथम ज्योतिषी से पूछा उसने कहा कि अभी महाराज को भद्रा है। फिर तेल वाले से पूछा कि आप कहिये, आपकी क्या सम्मति है? उसने कहा कि शीघ्रता क्या है, आप अभी तेल देखें और तेल की धार देखें। फिर ऊंट वाले से पूछा कि आप अपनी सम्मति कहिये। उसने कहा महाराज! देखिये ऊंट किस करवट बैठता है। यह ऐसे ही परामर्श करते रहे और शत्रु भीतर घुस आया। तब हीजड़े से पूछा कि कहिये अब आपकी क्या सम्मति है? उसने कहा कि आप कनात तान लो, क्या वे पर्दे में घुस आयेंगे?

...इसके अन्त में दुःख से मेज पर हाथ रखकर कहा कि यदि हमारे राजाओं की यह दशा न होती तो हमारी यह दुर्दशा क्यों होती। देश के विनाश का कारण यही हैं।'
(महर्षि दयानन्द सरस्तवी का जीवन चरित्र, पृष्ठ 271)

'इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गये।' (सत्यार्थप्रकाश,एकादशसमुल्लास,पृ. 191)

लंबे काल तक देश पर ऐसे ही राजाओं ने शासन किया है। इन्हीं की अयोग्यता के कारण वैदिक समाज में ऊंचनीच, छूतछात, आवागमन, बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, प्रकृतिपूजा, ग्रहपूजा, नियोग, सती प्रथा, दास प्रथा, देवदासी प्रथा, वेश्यावृत्ति, तंत्र-मंत्र, नरबलि, दहेज, ब्याज, नशा, अपहरण और बलात्कार आदि काम शुरू हुए और इन कर्मों से जिस उच्च्व वर्ग के स्वार्थ पूरे हो रहे थे, उसने इन्हें धर्म कहकर मान्यता दे दी। हिन्दू राजाओं की अयोग्यता का परिणाम यह हुआ कि शासन विधर्मी और विदेशियों के हाथ में चला गया। इससे बड़ा नुक्सान वे समाज को पहले ही पहुंचा चुके थे। वह यह था कि वे जनता के बीच अधर्म के कामों को धर्म के रूप में प्रचलित कर चुके थे। जिसे आज तक देखा जा सकता है।

स्वामी दयानन्द जी ने देशवासियों की दुर्दशा का कारण हिन्दू राजाओं की अयोग्यता बताया है जो कि बिल्कुल सही है। ऐसे में लोगों की दुर्दशा का कारण उनके पूर्वजन्म के बुरे कर्मों को बताना स्वयं ही ग़लत सिद्ध हो जाता है। कृपया इस तथ्य पर विचार करें।

¤ कन्या पैदा करने के लिए औरत को ज़िम्मेदार समझना ग़लत है

स्वामी जी कहते हैं कि कुछ परिस्थितियों में पति पत्नी एक दूसरे की अनुमति लिए बिना भी नियोग कर सकते हैं-

'विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के, पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले। जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे।।1।। वैसे ही पुरूष के लिये भी नियम है कि बन्ध्या हो तो आठवें (विवाह से आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहै), सन्तान होकर मर जायें तो दशवें, जब-जब हो तब-तब कन्या ही होवें पुत्र न हो तो ग्यारहवें वर्ष तक और जो अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे।।2।।'

(सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ., पृ. 78)

- स्वामी जी ने कन्या को जन्म देने के लिए औरत को ज़िम्मेदार समझकर ग़लती की है और यह कह कर भी कि जब-जब हो तब-तब कन्या ही होवें पुत्र न हो तो ग्यारहवें वर्ष तक रूक कर पुरूष किसी दूसरी स्त्री से नियोग करके पुत्र पैदा कर ले। जबकि वैज्ञानिक तथ्य यह है कि जिस 'y' गुणसूत्र से गर्भ में भ्रूण का लिंग निश्चित होता है। वह 'y' गुणसूत्र पुरूष में होता है, औरत में नहीं। उसी से वह औरत को प्राप्त होता है।

वेदों में सत्य का उपदेश मौजूद है। हम उसका सम्मान करते हैं लेकिन स्वामी जी के नियोगपरक वेदार्थ को ईश्वरीय आदेश नहीं माना जा सकता। मानव जाति के आरम्भ में पुनर्विवाह ही धर्म था और आज भी यही है। ईश्वर ने क़ुरआन में इसी

धर्म का उपदेश दिया है। खुद आर्य समाज भी क़ुरआन के इसी नियम का पालन कर रहा है, न कि दयानंद जी के विचार का। स्वामी जी के वैदिक विचार (?) का पालन किया जाए तो विधवाओं के पुनर्विवाह तो होने से रहे, कुंवारे लड़के लड़कियों के विवाह भी न हो पाएंगे और जिनके विवाह हो जाएंगे। वे बच्चे पैदा न कर पाएंगे।

¤ कई अरब लड़के-लड़कियों का विवाह असंभव बनाते वैदिक नियम

'किससे विवाह नहीं करना चाहिए ?' यह बताते हुए स्वामी जी मनु स्मृति के श्लोक उद्धृत करते हुए सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थसमल्लास में कहते हैं कि
महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्।।1।।मनु.।।
चाहे कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध ये कुल हों तो भी विवाह सम्बंध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग कर दे।

हीनक्रियं निष्पुरूषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।1।।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च।।2।।मनु.।।
जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरूषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े लोम, अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठ कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह न होना चाहिए, क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं। इसलिए उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिए।2।।

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकांगी न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान्न पिंगलाम्।।3।।मनु.।।
न पीले वर्ण वाली, न अधिकांगी अर्थात् पुरूष से लम्बी चौड़ी अधिक बलवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और न भूरे नेत्रवाली।।3।।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्।।4।।मनु.।।
न ऋक्ष अर्थात अश्विनी, भरणी, रोहिणीदेई, रेवतीबाई, चित्तारी, आदि नक्षत्र नाम वालीऋ
तुलसिया, गेंदा, गुलाब, चम्पा, चमेली आदि वृक्ष नामवाली; विन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नामवाली; कोकिला, मैना आदि पक्षी नामवाली; नागी, भुजंगा आदि सर्प नामवाली; माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नामवाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिए क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं।।4।।

(39) कौन सा घर ऐसा है जिसमें कोई पेट का मरीज़ न हो ?
(40) पीले रंग वाली या भूरे रंग की आँख वाली लड़की या लड़के का क्या क़ुसूर है कि उसका घर न बसने दिया जाए ?
(41) गुलाब, चम्पा, चमेली या पार्वती नाम में ऐसी क्या बुराई है कि इन नामों वाली लड़कियों से विवाह करने पर पाबंदी लगा दी जाए या उनसे विवाह करना अच्छा न समझा जाए ?
(42) स्वामी जी ने लड़कियों के तो इतने सारे नाम और लक्षण बता दिये लेकिन लड़के का एक भी न बताया, क्या इसे लड़कियों के साथ पक्षपात न समझा जाए ?
(43) अगर मनु स्मृति के इस निषेध या परामर्श को मान लिया जाए तो दुनिया के कई अरब लड़के-लड़कियों का विवाह असंभव हो जाता है। ये अरबों लड़के-लड़की अपनी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक ज़रूरत कैसे पूरा करें ?, स्वामी जी ने इसका कोई उपाय भी नहीं बताया।

¤ वैदिक धर्म का लोप क्यों हुआ?

अरबों जवान लड़के-लड़कियों को विवाह से रोक दिया जाए तो कितना भयानक अनाचार फैल जाएगा, इसका अंदाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। इसीलिए दुनिया ने स्वामी जी की बात पर ध्यान नहीं दिया। आर्य समाज के सदस्यों ने भी

उनकी बात पर अमल नहीं किया वर्ना स्वयं उनके विवाह भी न हो पाते। वास्तव में, असंभव बातों को वैदिक धर्म के नाम पर मनवाना ही उसके ख़त्म होने का कारण बना।

इस तरह की अवैज्ञानिक और अव्यवहारिक बात वही आदमी कह सकता है जिसके अपने कोई बाल-बच्चा न हो। स्वामी जी एक सन्यासी थे। एक सन्यासी को क्या पता कि घर-गृहस्थी कैसे बसाई जाती है ?, बच्चों का पालन-पोषण कैसे किया जाता है और उनका विवाह कब और कैसे किया जाए ?

केवल अनुमान लगाकर और कल्पना करके इस विषय में मार्गदर्शन करना संभव नहीं है, जैसा कि स्वामी जी ने किया है। जिसे गृहस्थी का और बाल-बच्चों के पालन-पोषण का और उनके विवाह का कोई व्यवहारिक अनुभव न हो, उसे इस गंभीर विषय पर बोलने से बचना चाहिए।

इसलाम बीमारी या नाम के आधार पर इस तरह की कोई पाबंदी नहीं लगाता। यही वजह है कि इसलाम में सबका विवाह संभव है। आज आर्य समाज भी इसलाम के नियमों का पालन कर रहा है। आर्य समाजी भाई दयानंदी वैदिक विचार का पालन करते तो उनके बच्चे-बच्चियों के विवाह न हो पाते।

लोगों को विवाह सुख से वंचित करने वाली अव्यवहारिक बात महर्षि मनु कभी नहीं कह सकते। वैसे भी मनु स्मृति की भाषा करोड़ों वर्ष पुरानी नहीं है। इसमें गाय पालने और घी जलाने का ज़िक्र मिलता है। इसका मतलब यही है कि ये नियम तब बनाए गए जबकि मनुष्य ने जंगली गाय बकरी को पालना सीख लिया था और वह उनके दूध से घी निकालने की तकनीक भी विकसित कर चुका था। यह महज़ चंद हज़ार साल पहले की बात है न कि करोड़ों साल पहले की। बाद में ऊँच-नीच, छूतछात और विवाह व नियोग के नियम बनाकर यह प्रचारित कर दिया कि ये नियम स्वयंभू मनु ने सिखाए हैं। इससे भी बड़ी ग़लती यह की गई कि प्रचारक उस विषय की भी शिक्षा देने लगे, जिस विषय का उन्हें क,ख,ग भी पता न था। इसी ग़लती को स्वामी जी जीवन भर दोहराते रहे।

स्वामी जी को क्या पता कि पति-पत्नी का अंतरंग संबंध क्या होता है और इस क्रिया को कैसे किया जाता है?,
(44) जिस चीज़ को एक आदमी ने कभी छुआ तो क्या देखा तक न हो, वह उसके साथ व्यवहार की सही शिक्षा कैसे दे सकता है ?,

इसके बावजूद स्वामी दयानंद जी पति-पत्नी को बताते हैं कि वे सहवास की परम गोपनीय क्रिया कैसे संपन्न करें ?, देखिए-

'पुरूष वीर्य्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें। जहां तक बने वहां तक ब्रह्मचर्य के वीर्य्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य्य वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। जब वीर्य्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरूष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहैं, डिगें नहीं। पुरूष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य्यप्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।' (सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास)

स्वामी जी के बताए तरीक़े से सहवास किया जाए तो वीर्य गर्भाशय तक न पहुंच सकेगा बल्कि बाहर ही गिर जाएगा। स्वामी जी बताते हैं कि जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय आए तो दोनों अपने शरीर के अंगों को सीधा कर लें। इस क्रिया के दौरान औरत-मर्द जैसे ही अपनी अपनी टाँगें सीधी करेंगे, लिंग गर्भाशय से दूर हो जाएगा। लिंग छोटा हुआ तो बाहर ही निकल जाएगा। पेट मोटा हुआ तो भी यही होगा।

औरत का क़द मर्द से थोड़ा छोटा होता है और कुछ मामलों में तो पत्नी का क़द अपने पति के मुक़ाबले डेढ़-दो फ़ुट तक छोटा होता है।। ऐसे में पत्नी को पति की नाक के सामने अपनी नाक और उसकी आँखों के सामने अपनी आँखें लाने के लिए थोड़ा सा ऊपर को सरकना होगा। थोड़ा सा ऊपर को सरकते ही लिंग उसके गर्भाशय से और ज़्यादा दूर हो जाएगा या बाहर ही निकल जाएगा। सही बात का पता न हो तो आदमी को चुप रहना चाहिए। उसमें दख़लअंदाज़ी करना और अपनी कल्पना को वैज्ञानिक बताना लोगों के जीवन से खेलना है।

¤ बच्चे पैदा करना मुश्किल क्यों हुआ?

बहुधा हिन्दू राजा व प्रजा अपने बल पर स्वयं का बच्चा पैदा न कर पाते थे। रामायण से लेकर महाभारत तक इतिहास में इसके अनेकों उदाहरण भरे पड़े हैं। इसका कारण यही था कि उनके गुरू उन्हें अपने अनुमान से ग़लत शिक्षा दिया करते थे। इसी ग़लत शिक्षा के कारण बहुतों को अपनी पत्नियाँ दूसरों को सौंपनी पड़ीं और उन्हें अपने घर में दूसरों के बच्चे पालने पड़े।

स्वामी दयानंद जी ने सहवास की यह विधि ऐसे किसी प्राचीन आचार्य की पुस्तक से पढ़कर बताई है या फिर मात्र अपनी

कल्पना से बता दी है। जैसे भी बताई है, ग़लत बताई है। इस तरीक़े से सहवास करने से वीर्य का गर्भाशय तक पहुंचना असंभव है। जिस विषय का उन्हें कोई व्यवहारिक ज्ञान नहीं था। उसमें राय देकर पति-पत्नी के लिए मुश्किलें खड़ी करने का क्या तुक है ?

सहवास की यह विधि केवल बच्चा पैदा करने के लिए बताई गई है। औरत और मर्द के अपने भी कुछ जज़्बात होते हैं, उनकी संतुष्टि को इसमें पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। आगे एक और बेतुकी पाबंदी लगाते हुए कहते हैं कि

'जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय तब से एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री पुरूष का समागम कभी न होना चाहिए। क्योंकि ऐसा न होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है।' (सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास, पृष्ठ सं. 63)

स्वामी जी ने आगे यह भी कहा है कि

'जब सन्तान का जन्म हो तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे' (सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास, पृष्ठ सं. 63)

इस तरह उन्होंने लड़के के महत्व को बढ़ा दिया और लड़की को एक अवांछनीय चीज़ बना दी। नियोग का उद्देश्य भी स्वामी जी ने पुत्र पैदा करना ही बताया है, उन्होंने कहीं नहीं बताया कि किसी को कन्या पैदा करनी हो तो वह किस विधि का पालन करे ?

इसी के साथ स्वामी जी ने 'संस्कार विधि' में यह भी निश्चित कर दिया कि बिना गर्भाधान संस्कार के पत्नी से सहवास न करे। उन्होंने समय भी निश्चित कर दिया है कि सहवास केवल रात्रि में ही किया जाए। जिस रात गर्भाधान संस्कार करना हो तो उस दिन हवन करे। 4 पुरोहित चारों दिशाओं में बैठें। वे आग में घी, दूध, शक्कर, भात और मोहन भोग डालकर आहुतियां दें। जो घी शेष रहे उसे लेकर वधू अपने सिर से लेकर पैर तक सारे शरीर पर मलकर नहाए। नहाने के बाद वह पति, उस के पिता, पितामह आदि, अन्य माननीय पुरूषों, पिता की माता, अन्य कुटुंबी और संबंधियों की वृद्धस्त्रियों को नमस्कार करे। तत्पश्चात पुरोहितों को भोजन कराए और सत्कारपूर्वक उन्हें विदा कराए।

जब भी अपनी पत्नी के साथ सहवास करना हो तो पहले 4 पुरोहितों को बुलाकर उनसे मंत्र पढ़वाओ और सब रिश्तेदारों को बताओ कि हम आज रात क्या करने वाले हैं ?

उन सबको खिलाने पर भारी ख़र्च अलग से आएगा। इतने लोगों को बुलाना और उन्हें खिलाना हरेक आदमी के बस की बात नहीं है। इसका मतलब तो यह हुआ कि जिन करोड़ों भारतीयों की आमदनी 20 रूपये प्रतिदिन भी नहीं है, वे न तो गर्भाधान संस्कार कर पाएंगे और न ही औलाद का मुँह देख पाएंगे।

इस पूरी प्रक्रिया में औरत एक तमाशा बन कर रह जाती है। इसलिए जिन लोगों के पास रूपया पैसा भी है, वे भी गर्भाधान संस्कार नहीं करते।

सन्तान पैदा करने के लिए जो कुदरती तरीक़ा है। सब उसी का पालन करते हैं। इसलाम भी उसी की शिक्षा देता है। आज सनातनी और आर्य समाजी, सभी गर्भाधान संस्कार किये बिना प्राकृतिक तरीक़े से ही औलाद पैदा कर रहे हैं। सत्य अपने आप को स्वयं मनवा लेता है।

¤ वैदिक संस्कारों के बिना भी उत्तम गुणों की प्राप्ति संभव है

एक प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी कहते हैं-

'देखो, मेमों अर्थात् अंग्रेज़ों की स्त्रियों को, वे भारत की स्त्रियों की अपेक्षा कितनी अधिक साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी होती हैं।' (म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 289)

भारतीय नारियां कुछ वैदिक संस्कारों का पालन करती हैं और अंग्रेज़ औरतें किसी वैदिक संस्कार का पालन नहीं करतीं। फिर भी स्वामी जी ने उन्हें भारतीय नारियों की अपेक्षा अधिक साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी माना है।

ऐसा कहकर उन्होंने वैदिक संस्कारों पर स्वयं ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

- जब वैदिक संस्कारों के बिना अंग्रेज़ औरतें साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी हो सकती हैं तो फिर वैदिक संस्कारों की आवश्यकता ही क्या रह जाती है ?

¤ वैदिक संस्कारों का ख़ात्मा

इसीलिए लोगों में वैदिक संस्कारों के पालन की रूचि ख़त्म हो चुकी है। वैदिक धर्म में 16 संस्कारों का पालन अनिवार्य

माना जाता है-

1. गर्भाधान 2. सीमन्तोन्नयन 3. जातकर्म 4. नामकरण 5. निष्क्रमण 6. अन्नप्राशन 7. चूड़ाकर्म 8. कणवेध 9. उपनयन 10. वेदारम्भ 11. समावर्तन 12. विवाह 13. गृहाश्रम 14. वानप्रस्थ 15. संन्यास और 16. अन्त्येष्टि

स्वामी दयानंद जी ने भी इनके पालन पर ज़ोर दिया है। गर्भाधान संस्कार को पहले नंबर पर रखा गया है। इस समेत 10 संस्कारों को हिन्दू समाज सैकड़ों वर्ष पहले ही छोड़ चुका था। बाक़ी बचे हुए संस्कारों का भी रूप बदल चुका है। स्वामी जी का मानना था कि

'संस्कारों का मूल गर्भाधान है और गर्भाधान पुरूष-स्त्री के पूर्ण ब्रह्मचर्य के बिना हो नहीं सकता। इसलिए संस्कारों की प्रणाली को पुनः प्रचलित करने के लिए हमें ब्रह्मचर्य की दृढ़ नींव डालनी चाहिए।' (म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 922)

¤ वैदिक संस्कारों को पुनः प्रचलित करने में असफल

स्वामी दयानंद जी हिन्दू समाज में गर्भाधान आदि 16 संस्कारों को फिर से रिवाज देने में असफल रहे। वह आर्य समाज के सदस्यों से भी 16 संस्कारों का विधिवत पालन न करा सके। आज भी आर्य समाज के सदस्य 16 संस्कारों का पालन नहीं करते। वे अपने बच्चों को वैदिक गुरूकुल में पढ़ाने के बजाय कॉन्वेंट स्कूलों में पढ़ाते हैं। जहां ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं हो पाती। वहां लड़के लड़कियां सब एक साथ पढ़ते हैं। स्वामी जी के नाम पर बनने वाले दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिजों तक में यही व्यवस्था है। जबकि स्वामी जी बताते हैं कि लड़के लड़कियों की पाठशालाएं एक दूसरे से दो कोस दूर होनी चाहिएं। लड़कों की पाठशाला में शिक्षक व अन्य कर्मचारी सब पुरूष होने चाहिएं और लड़कियों की पाठशाला में महिलाएं।

'स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरूषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहैं तब तक स्त्री वा पुरूष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्परक्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से दूर रहें' (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय. पृष्ठ 26)

कोई भी आर्य समाजी इस वैदिक नियम का पालन नहीं कर सकता। स्वयं स्वामी दयानंद जी भी नहीं कर पाए।
(45) जिन नियमों का पालन समाज न कर पाए या उन्हें बनाने वाला स्वयं भी न कर पाए, ऐसे कठोर नियम बनाने से क्या फ़ायदा?

स्वामी जी ने स्त्री के लिए पुरूष का और पुरूष के लिए स्त्री का देखना और उससे बात करना तक ब्रह्मचर्य का टूटना माना है। इन्हें भी स्वामी जी ने एक प्रकार का मैथुन माना है। उन्होंने विषयकथा और विषय के ध्यान को भी मैथुन का ही एक प्रकार माना है।

¤ ब्रह्मचर्य की रक्षा कैसे संभव है?

स्वामी जी की जीवनी में उनके द्वारा मैडम ब्लैवट्स्की समेत अनेक औरतों को देखना व उनसे बात करना दर्ज है। उन्होंने संभोग विषय का अच्छी तरह ध्यान भी किया और सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अपनी पुस्तकों में उसका विस्तार से कथन भी किया।
(46) क्या इस प्रकार स्वामी जी ने 4 प्रकार का मैथुन करके अपना ब्रह्मचर्य स्वयं ही नष्ट नहीं कर लिया ?
(47) वैदिक पाठशालाओं में आर्य बालक बालिकाएं भी इन पुस्तकों को पढ़ते हैं तो क्या उनका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं हो जाता ?

¤ विवाह संस्कार का ख़ात्मा

यह सत्य है कि स्वामी जी के आने तक विवाह संस्कार बचा हुआ था। आर्य बंधु इसे भी बचाकर न रख सके। स्वामी जी के आने के बाद वे अपने संस्कारों के पालन में उन्नति तो क्या करते, इसके विपरीत उन्होंने बाक़ी बचे हुए विवाह संस्कार को भी ध्वस्त कर दिया।

वैदिक धर्म में पहले विवाह भी एक संस्कार हुआ करता था। हालाँकि आज भी सनातनी और आर्य समाजी विवाह को संस्कार कह देते हैं लेकिन जब से पत्नी को तलाक़ और पुनर्विवाह का अधिकार मिला है, तब से विवाह संस्कार न रहा बल्कि वह इसलामी निकाह की तरह एक क़रार हो गया जो कि तलाक़ और मौत से टूट सकता है। जब विवाह एक संस्कार हुआ करता था तब पत्नी न तो अपने पति से तलाक़ ले सकती थी और न ही उसकी मौत के बाद पुनर्विवाह कर सकती थी।

आर्य महिला के लिए तलाक़ और पुनर्विवाह के लिए आन्दोलन चलाने वालों में आर्य समाजी भाई भी थे।
(48) उन्होंने अपने संस्कार को ख़ुद ही ध्वस्त करके विवाह को निकाह जैसा क्यों बना लिया ?,

केवल इसलिए कि समस्या का वास्तविक हल विवाह संस्कार में संभव नहीं है बल्कि विवाह संस्कार औरतों के लिए कष्टकारी है। इसीलिए विवाह संस्कार को सर्वसम्मति से समाप्त कर दिया गया। इस तरह वैदिक समाज वैदिक धर्म से दूर और इसलाम के क़रीब हो गया।

(49) इसे वैदिक धर्म की सेवा कही जाएगी या कि इसलाम की ?

वैदिक धर्मियों ने विवाह संस्कार में जो बदलाव किए हैं, वे आज सबके सामने हैं। इसी प्रकार इन्होंने बहुत पहले अंतिम संस्कार की क्रिया को भी बदला है। आरंभ में मृतकों को ज़मीन में दफ़ना कर अंतिम संस्कार किया जाता था लेकिन बाद में जब युद्धों में बड़ी संख्या में मनुष्य मारे गए तो मृतकों को जलाना भी शुरू कर दिया ताकि लाशें सड़कर बीमारियां न फैलाएं। आज हिन्दू समाज में दोनों तरीक़े प्रचलित हैं। वैदिक आचार्य वेदों में दोनों तरीक़े पाते हैं। कोई न जाने या न माने तो बात अलग है। इसलाम में केवल एक ही तरीक़ा पाया जाता है और वह है मुर्दों को दफ़न करना।

¤ मृतक को जलाने की शुरूआत कैसे हुई?

''युद्ध में जब अनेक लोग मारे जाते हैं तब इन सैकड़ों मृत देहों की योग्य तथा अहानिकारक रीति से व्यवस्था करना, एक समस्या बन जाती है। आरम्भ में मनुष्य मरने पर उसका देह कहीं भी दूर ले जाकर रख देते थे। इसे 'परावपन' कहते। बिल्कुल पहले युग में यही मार्ग लोगों को सूझा। परन्तु उस मृत देह की गीधों या श्वापदों द्वारा की हुई बुरी दशा देखकर उन्होंने गाड़ने की विधि निकाली, जो 'निखनन' कहलाया गया। प्रेत गाड़े जाते और उस स्थान के ऊपर एक प्रस्तर रखा जाता। किन्तु लड़ाई में मारे गये सैकड़ों हजारों मृत लोगों के देहों की इस प्रकार व्यवस्था करना सुलभ भी न था। वैशाली के से छोटे देश में इस कार्य के लिए रखा हुआ स्थान सीमित था और उससे अधिक भूमि इस काम के लिए देना संभव न था क्योंकि वैसा करने से कृषि योग्य भूमि कम होने वाली थी। सारी ही बातें ध्यान में रख वैशाली के दो पुरोहित अंगिरस और विवस्वान् ने खूब विचार किया और उनके मन में अग्निदाह संस्कार की कल्पना प्रकट हुई। विवस्वत् पुत्र यम ने इसलिए यम, पितर इत्यादि देवताओं की कल्पना निकाली और उसी के नाम पर से यह पौराणिक कल्पना प्रसृत हुई कि मृत्यु के देवता यमदेव विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र थे। प्रेतों का अग्निसंस्कार क्रूर कर्म नहीं अपितु एक प्रकार का यज्ञ है, इस कल्पना को रूढ़ करने में, अंगिरस पुत्र अथर्वन् ने भी खूब सहायता दी। इस यज्ञ को 'पितृमेध यज्ञ' नामक प्रतिष्ठित संज्ञा इसी ने मिला दी।'' (ऋग्वेद का सूक्त विकास, पृष्ठ 70 व 71)

¤ मृतक को दफ़न करना ही अंतिम संस्कार का सही तरीक़ा है

अग्नि की खोज से पहले लोगों के लिए मृतकों का दाह संस्कार करना असंभव था। इसलिए यह आसानी से समझा जा सकता है कि अग्नि की खोज से पहले मृतकों का अंतिम संस्कार उन्हें दफ़ना कर ही किया जाता था। जिसे अग्नि की खोज के बाद हालात और ज़रूरत की वजह से बदल दिया गया, जैसे कि आज विवाह संस्कार को बदल दिया गया है।

जंगलों के ख़ात्मे की वजह से आने वाले समय में चिता जलाना संभव नहीं रह जाएगा। ग्लोबल वॉर्मिंग के कारण इलेक्ट्रिक हीटर से भी मुर्दे को फूंकना पर्यावरण को नुक़्सान पहुंचाता है। ले देकर मृतकों को दफ़नाना ही उनके अंतिम संस्कार का एकमात्र तरीक़ा बचेगा।

वैसे भी आज सही वैदिक विधान से मुर्दे को जलाना संभव नहीं है क्योंकि यह बहुत महंगा है। केसर का उत्पादन इतना नहीं होता कि हर इंसान ख़रीदना चाहे तो ख़रीद ले। हर इंसान के हिस्से में एक सेर केसर नहीं आ सकता। कस्तूरी पाने के लिए हिरनों का शिकार इतना हुआ कि अब वे लुप्त प्रायः हैं। सो हर इंसान के लिए कस्तूरी मिलना भी संभव नहीं है।

महर्षि दयानन्द सरस्तवी का जीवन चरित्र, पृष्ठ 831 पर बताया गया है कि दो मन (80 किग्रा.) चन्दन, दस मन (400 किग्रा.) पीपल की लकड़ी, चार मन (160 किग्रा.) घी, पांच सेर कपूर, एक सेर केशर, दो तोला कस्तूरी आदि सामग्री स्वामी जी की चिता को जलाने में ख़र्च की गई।

उनकी चिता के ख़र्चे को आज जोड़ा जाए तो लगभग 9 लाख रूपये बैठता है। स्वामी जी ने 'संस्कारविधि' में हरेक मृतक को इतनी सामग्री के साथ जलाना ही वैदिक संस्कार बताया है।

(50) इतना ख़र्च कौन वहन कर सकता है ?

जिनके पास धन है। उनके क़स्बों और नगरों में भी 80 किलोग्राम चन्दन और एक सेर केसर का इन्तेज़ाम हर समय नहीं होता। राजा, महाराजाओं और प्रधानमंत्रियों को जलाने के लिए भी इन चीज़ों की व्यवस्था विशेष रूप से की जाती है। क़स्बों से दूर के गांव देहात में इन चीज़ों की व्यवस्था करना तो दूर, 160 किलोग्राम शुद्ध देशी घी जुटाना ही मुश्किल है।

स्वामी जी के वैदिक संस्कारों का पालन केवल राजा महाराजा और गिने चुने पूंजीपति ही कर सकते हैं, जन सामान्य नहीं। ग़रीब आदमी तो लकड़ी और मिट्टी का तेल ख़रीदने में ही क़र्ज़दार हो जाता है। इस समाज में ग़रीबी इतनी है कि बहुतों

को ये चीज़ें उधार भी नहीं मिल पातीं। वे अपने प्रियजनों की लाशें किसी नदी में फेंकने पर मजबूर होते हैं। जल को प्रदूषण से बचाने के लिए सरकार ने नदियों में लाशें फेंकने पर क़ानूनी प्रतिबंध लगा दिया है।

ऐसी ख़बरें भी आई हैं कि वृन्दावन में अनाथ विधवाओं के शवों को स्वीपर ने छोटे छोटे टुकड़ों काटकर जूट की थैलियों में भरा और उन्हें ऐसे ही कहीं फेंक दिया। वे यह सब कभी न करते, अगर उन्हें पता होता कि अंतिम संस्कार का सही तरीक़ा मृतक को भूमि में गाड़ना है। भारतीय सन्यासियों में यह रीति आज तक प्रचलित है। दो सन्यासियों ने स्वामी जी के शव को भूमि में गाड़ने का आग्रह किया भी था।

¤ दफ़नाना सहीः दो संन्यासियों की गवाही

'उनके परलोकगमन का समाचार सुनकर दो संन्यासी वहां आये और कहने लगे कि हम तुम को महाराज का शरीर जलाने नहीं देंगे। प्रत्युत गाड़ेंगे जैसी कि वर्तमान अवस्था में संन्यासियों की प्रथा बन रही है परन्तु सामाजिक पुरूषों ने कहा कि महाराज ऐसी बातों को पहले से ही विचार कर अपना वसीयतनामा लिख चुके हैं; उसके अनुसार ही किया जायेगा। सारांश यह कि उन संन्यासियों ने बहुत जोर मारा और कहा कि चाहे महाराज हमारे विरोधी ही थे परन्तु फिर भी हमारे ही थे। यदि हमारी मंडली होती तो हम बलात् छीन ले जाते परन्तु क्या करें, हम केवल दो मनुष्य हैं।'
(महर्षि दयानन्द सरस्तवी का जीवन चरित्र, पृष्ठ 830)

लोग चाहें या न चाहें लेकिन परिस्थितियां उन्हें दफ़नाने के तरीक़े पर लौटने के लिए मजबूर कर रही हैं।

¤ दफ़नाना सहीः वेद की गवाही

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवी मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि।।11।।
-ऋग्वेद 10,19,11

हे पृथिवी! मृतक को सन्ताप से बचाने के लिए ऊँचा करो। तुम इसकी परिचर्या करने वाली बनो। जैसे माता अपने पुत्र को ढकती है, वैसे ही इस कंकाल रूप मृत को तुम अपने तेज से ढक दो। (अनुवादःपं. श्रीराम शर्मा आचार्य)

¤ क्या कोई मूर्ख व्यक्ति चतुर और निपुण हो सकता है?

स्वामी जी ने शूद्रों के पढ़ने के अधिकार को मानकर उन्हें थोड़ी बहुत राहत पहुंचाई है। यह सही है लेकिन फिर भी उन्हें अन्य वर्णों से नीच ही माना है। दयानन्द जी 'शूद्र' और उसके कार्य को लेकर भी भ्रमित हैं। उदाहरणार्थ - सत्यार्थप्रकाश, पृष्ठ 50 पर 'निर्बुद्धि और मूर्ख का नाम शूद्र' बताते हैं और पृष्ठ 73 पर 'शूद्र को सब सेवाओं में चतुर, पाक विद्या में निपुण' भी बताते हैं।

(51) क्या कोई मूर्ख व्यक्ति, चतुर और निपुण हो सकता है? क्या बुद्धि और कला कौशल से युक्त होते ही उसका 'वर्ण' नहीं बदल जायेगा?

(52) क्या ऊंचनीच को मानते हुए भेदभाव रहित प्रेमपूर्ण, समरस और उन्नति के समान अवसर देने वाला समाज बना पाना संभव है?

¤ बच्चों को शिक्षा देने में भेदभाव नहीं करना चाहिए

'6 वर्ष से 8वें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और 9वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आर्यकुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिए गुरूकुल में भेज दें।' (सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय. पृष्ठ 27)

बच्चों के कोमल मन में ऊँच-नीच और भेदभाव का ज़हर भर देना बहुत बड़ा अपराध है। हज़ारों वर्ष तक वैदिक गुरूकुलों में यही किया गया। जिसके नतीजे में भारतीय समाज में अन्याय और शोषण का बोलबाला हुआ, समाज कमज़ोर हुआ और देश विदेशियों का ग़ुलाम बना। उसी भयानक ग़लती को दोहराते रहने की शिक्षा देना, देश और मानवता के साथ दुश्मनी करना है।

(53) अगर बचपन में ही ऊँचनीच की दीवारें खड़ी कर दी जायेंगी तो बड़े होकर तो ये दीवारें और भी ज्यादा ऊंची हो जायेंगी,

फिर समाज उन्नति कैसे करेगा?

(54) 8 वर्ष की अवस्था के बच्चे को देखकर यह फ़ैसला कैसे किया जाएगा कि वह ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, वैश्य है या शूद्र है ?

अगर स्वामी जी मासूम बच्चों को बिना किसी कर्म के ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बाँटते हैं तो इसका मतलब, वह उनके माता पिता के वर्ण को ही उनके बच्चों का वर्ण स्वीकार करते हैं। ऐसे में यह कहना कि हम वर्ण का आधार कर्म को मानते हैं, केवल शब्दजाल रचना और दूसरों को धोखा देना है।

¤ स्वामी जी वर्ण का आधार जन्म को ही मानते थे

स्वामी जी अपनी पुस्तक 'संस्कार विधि' में बताते हैं कि गोद के बच्चों के नाम रखते समय भी उनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होने का पूरा ध्यान रखना चाहिए। वह लिखते हैं-

''नामकरण का काल जिस दिन जन्म हो, उस दिन से ले के 10 दिन छोड़ 11वें व 101 (एक सौ एक) में अथवा दूसरे वर्ष के आरंभ में, जिस दिन जन्म हुआ हो, नाम धरे'' (संस्कार विधि, पृष्ठ 63)

''देव अथवा जयदेव ब्राह्मण हो तो देव शर्मा, क्षत्रिय हो तो देव वर्मा, वैश्य हो तो देव गुप्त और शूद्र हो तो देव दास इत्यादि...बालक का नाम धर के पुनः 'ओं कोसि.' ऊपर लिखित मंत्र बोलना.'' (संस्कार विधि, पृष्ठ 66)

स्वामी दयानंद जी जन्म के आधार पर भेदभाव करना परम धर्म मानते थे। इसलाम इसे ज़ुल्म और जहालत मानता है। इसलाम के भारत में आने के बाद इस तरह की ज़ुल्म ज़्यादती में काफ़ी कमी आ चुकी थी। रायपुर में हरि सिंह जी द्वारा शेख़ ईलाहीबख्श को अपना मंत्री बनाना इसका उदाहरण है लेकिन स्वामी जी मुसलमानों से सही बात तो क्या सीखते, उल्टा उन्होंने उनका भी वर्ण जन्म के आधार पर निश्चित कर दिया। उन्होंने मुसलमानों को दासी पुत्र बताकर हरि सिंह से ईलाही बख़्श को मंत्री पद से हटाने के लिए कहा था। इस तरह उनकी मान्यता की पुष्टि उनके आचरण से भी हो जाती है और किसी लीपा पोती की कोई गुंजाइश शेष नहीं रहती।

स्वामी दयानंद जी समाज सुधारक नहीं थे बल्कि वह वर्ण व्यवस्था के रक्षक थे और वर्ण व्यवस्था की रक्षा वह कर न पाए। आज भारत में इस तरह के भेदभाव पर क़ानूनी रूप से प्रतिबंध है जो कि वैदिक धर्म के ख़िलाफ़ है और इसलाम के अनुकूल है।

¤ मनु के नाम पर भेदभाव मत फैलाओ

स्त्रियों की साक्षी स्त्री, द्विजों के द्विज, शूद्रों के शूद्र और अन्त्यजों के अन्त्यज साक्षी हों ।।2।। जितने बलात्कार काम चोरी, व्याभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपातन रूप अपराध हैं उनमें साक्षी की परीक्षा न करे और आवश्यक भी समझे क्योंकि ये काम सब गुप्त होते हैं ।। 3।। (सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठम, 110)

गवाह की सच्चाई को परखे बिना ही आरोपी व्यक्ति को मृत्युदण्ड आदि कठोर सजा देना सरासर अन्याय है बल्कि इस तरह तो मामूली सजा देना भी उचित नहीं है। न्यायकारी व्यक्ति के लिए यह उचित नहीं है कि वह लिंग-भेद या वर्ण-भेद से काम ले। हरेक को आजादी होनी चाहिए कि वह अपनी सच्चाई का गवाह जिस वर्ग से लाना चाहे, ले आये।

इस तरह की बातें जब वेद और महर्षि मनु के नाम पर फैलायी जाती हैं तो समाज मे असन्तोष और आक्रोश पैदा होता है और लोग उनकी निन्दा करके धर्म से दूर हो जाते हैं। महर्षि मनु तो मानव जाति के पिता हैं।

(55) क्या कोई पिता अपने बच्चों में ऊँचनीच की बातें पैदा करके उनका अहित करता है?

नहीं, बल्कि बाप की स्नेहदृष्टि अपने बच्चों में सबसे ज़्यादा उस पर होती है जो सबसे ज़्यादा कमज़ोर होता है। जो ख़ुद किसी का बाप न हो वह कैसे जान सकता है कि एक बाप अपने बच्चों को किस तरह रहना सिखाता है ?

इस तरह की बातें करने वाला व्यक्ति लोगों को ईश्वर और धर्म से दूर करता है। महर्षि मनु के विषय में इस तरह की अवैज्ञानिक और अन्यायपूर्ण बातें वही कह सकता है, जिसे महर्षि मनु के विषय में कुछ भी पता न हो कि वह कौन थे और उनका धर्म क्या था ?

यही कारण है कि स्वामी दयानंद जी ने हरेक आदमी पर हवन जैसे कर्मकांड करना अनिवार्य कर दिया, जिन्हें करने के लिए बहुत सा धन और समय चाहिए। आज भारत में ही करोड़ों लोग 20 रूपये प्रतिदिन भी नहीं कमा पाते। जिन लोगों के पास धन का ढेर लगा हुआ है, उनके पास समय का अभाव है। आज के व्यस्त जीवन में समय का अभाव एक आम समस्या है।

स्वामी जी के अनुसार हरेक मनुष्य को सुबह और शाम सोलह-सोलह कुल 32 आहुतियाँ देना अनिवार्य है। एक आहुति में कम से कम 6 माशे शुद्ध देशी घी होना चाहिए, घी ज़्यादा चाहे जितना हो परंतु 6 माशे से कम न हो। अगर एक परिवार में 10 आदमी हों तो एक दिन में कुल 320 आहुतियाँ देनी होंगी और इसमें लगभग 2 किलोग्राम शुद्ध देशी घी लगेगा जो कि 800

रूपये मूल्य का होगा। एक महीने में केवल घी का ख़र्च 24,000 रूपये बैठ रहा है। केसर-चंदन आदि सामग्री और आम व पलाश की लकड़ी का ख़र्च जोड़ें तो यज्ञ की मासिक लागत 50,000 रूपये से ऊपर पड़ती है। हर परिवार की इतनी आमदनी न पहले थी और न आज है।

ऐसे में समाज का हरेक नर नारी सुबह शाम हवन कैसे कर सकता है ?

स्वामी जी का सपना 'कृण्वंतो विश्मार्यम्' साकार हो जाता अर्थात सारा विश्व आर्य बन जाता तो पूरे विश्व की 7 अरब की आबादी यज्ञ करती। इस मद में एक ही वर्ष में 35,000000000000 रूपये अर्थात पैंतीस सौ अरब रूपये ख़र्च हो जाते और दुनिया का सारा घी महीने भर में ही धुआँ हो जाता। जंगल पहले ही कम थे। बचे हुए पेड़ भी महीने भर में ही कट जाते। पेड़ों का संपूर्ण नाश मनुष्य जाति के महाविनाश के रूप में सामने आता। धन तो जाता ही, जन भी जाता और जीवन भी जा चुका होता।

ईश्वर को धन्यवाद, कि उनका सपना साकार नहीं हुआ लेकिन चिंता की बात यह है कि आज भी कुछ लोग उनके सपने को पूरा करने का सपना देखते हैं और वे यज्ञ-हवन भी करते रहते हैं।

काश ! वे जानते कि अग्नि की खोज से पहले धर्म में हवन नहीं था। तब यज्ञ केवल ईशवाणी के पाठ, प्रार्थना, ध्यान और नमन के द्वारा ही संपन्न होता था जैसे कि नमाज़ में आज भी केवल यही सब है, हवन नहीं है, कोई ख़र्चा नहीं है। नमाज़ से मानव जाति को कोई ख़तरा नहीं है, केवल लाभ ही लाभ है।

¤ शूद्र कौन ?

'(पद्भ्याँ शूद्रो.) जैसे पग सबसे नीच अंग हैं, वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।'
(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ 92)

¤ हवन न करने वाले शूद्रवत् हैं

स्वामी जी कहते हैं कि

'इसलिए दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए।।3।। और जो ये दोनों काम सायं और प्रातःकाल में न करे उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें अर्थात् उसे शूद्रवत् समझें।।4।।
(सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थसमुल्लास, पृष्ठ सं. 65)

दूसरे तो दोनों समय हवन क्या करते, स्वयं आर्य समाज के सदस्य ही दोनों समय हवन नहीं कर पाते जबकि घी, चंदन और लकड़ी का सारा ख़र्च भी संस्था की ओर से ही किया जाता है। इस कठोर नियम का नतीजा यह हुआ कि स्वामी जी किसी को कर्मणा ब्राह्मण आदि तो क्या बनाते, अपने आर्य समाज के सदस्यों को ही शूद्र बना दिया।

अंतकाल में वह ख़ुद उनका भी हवन छूट गया था।

(56) जब सारा समाज ही शूद्रवत् हो जाए तो उसे द्विजों के कर्म से बाहर कौन निकाले ?

लिहाज़ा आज आर्य समाज को यही लोग चला रहे हैं जिन्हें स्वामी दयानंद जी ने शूद्रवत् ठहराया है।

आर्य समाजी होने का अर्थ आज स्वामी दयानंद जी के बताए वैदिक नियमों का पालन करना नहीं रहा बल्कि दूसरों की मान्यताओं का मज़ाक़ उड़ाना भर रह गया है। सत्यार्थप्रकाश पढ़कर वे दूसरों का मज़ाक़ उड़ाते रहते हैं कि देखो, स्वामी जी ने इसे यह कह दिया, उसे वह कह दिया और उन्हें अपना पता नहीं है कि स्वामी जी तुम्हें शूद्रवत् घोषित करके गए हैं।

जब दिल से ईश्वर, धर्म और सत्य की चाह निकल जाए तो व्यक्ति और समाज ऐसा ही बनकर रह जाता है।

धर्म ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता कि धर्म में श्रद्धा रखने वाले उस पर चलना चाहें तो चल न सकें। धर्म को ऐसा होना चाहिए, जिस पर समाज चलना चाहे तो चल सके और वास्तव में धर्म ऐसा ही है। ईश्वर ने मनुष्यों पर अपार दया की है जो कि उन पर नमाज़ अनिवार्य की। इसे अमीर-ग़रीब, औरत-मर्द-बच्चे, पहलवान और बीमार सब कर सकते हैं। नमाज़ में ईश्वर का ध्यान है, उससे प्रार्थना है और उसकी वाणी का पढ़ना और सुनना है। अन्न, फल, घी और लकड़ी फूंकने का कोई ख़र्च इसमें सिरे से ही नहीं है।

(57) भुखमरी और कुपोषण से जूझते हुए भारत में खाने-पीने की चीज़े जलाने की सलाह कौन सा वैज्ञानिक दे सकता है ?

वैसे भी हवन से वायु शुद्ध नहीं होती। मनुष्य वातावरण से ऑक्सीजन लेकर कार्बन डाई ऑक्साइड छोड़ता है। यह कार्बन डाई ऑक्साइड हवन में सामग्री और लकड़ी जलाने से ऑक्सीजन नहीं बन जाती। वास्तव में पेड़ वायु को शुद्ध करते हैं।

पेड़ कार्बन डाई ऑक्साइड लेकर ऑक्सीजन छोड़ते हैं, जिस पर हमारा जीवन निर्भर है। इसलिए जगह जगह पेड़ लगाने चाहिएं। सुगंध के लिए फूल वाले पौधे और लताएं भी लगाई जा सकती है।

हवन के लिए पेड़ काटने पड़ते हैं, जो कि वायु शुद्ध करते हैं। इस तरह हवन से न केवल वायु शुद्ध नहीं होती बल्कि उल्टा वायु को शुद्ध करने वाले पेड़ों का विनाश होता है। स्वयं से सूख कर गिरी हुई लकड़ियां इतनी नहीं होतीं कि वे सबके लिए पर्याप्त हो जाएं।

हवन करने से कार्बन पैदा होता है जो कि वायु को और ज़्यादा प्रदूषित करता है। इसी के साथ ताप भी पैदा होता है जो कि ग्लोबल वॉर्मिंग को बढ़ाता है।
नमाज़ इन सब समस्याओं का समाधान है।

¤ अन्य धर्मग्रन्थों की समीक्षा की निरर्थक चेष्टा

(58) जिस ज्ञान को, वैदिक साहित्य को स्वामी जी ने जीवन भर पठन पाठन में रखा और स्वयं को उसका विशेषज्ञ घोषित कर दिया, जब वह उसी को नहीं समझ पाए तो अन्य धर्मो के जिन ग्रन्थों की मूल भाषा का ज्ञान भी उन्हें नहीं था और जहाँ तहाँ से अनुवाद देखकर जल्दबाज़ी में उनकी समीक्षा कर डाली तो क्या वह सारी समीक्षाएँ स्वयं ही व्यर्थ होकर निरस्त नहीं हो जातीं?

जो बात उन्होंने जैन आदि के साहित्य के विषय में कही है, वह स्वयं उन पर भी सटीक बैठती है।

'इसलिये जैसे एक हण्डे में चुड़ते चावलों में से एक चावल की परीक्षा करने से कच्चे व पक्के हैं सब चावल विदित हो जाते हैं। ऐसे ही इस थोड़े से लेख से सज्जन लोग बहुत सी बातें समझ लेंगे। बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं।' (सत्यार्थप्रकाश, द्वादश. पृष्ठ 319)

'जो अविश्वासी, अपवित्रात्मा, अधर्मी मनुष्यों का लेख होता है उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्य का काम नहीं।' (सत्यार्थप्रकाश, त्रयोदशसमुल्लास, पृष्ठ 345)

'जिनको विद्या नहीं होती वे पशु के समान यथा तथा बर्ड़ाया करते हैं। जैसे सन्निपात ज्वरयुक्त मनुष्य अण्ड बण्ड बकता है वैसे ही अविद्वानों के कहे वा लेख को व्यर्थ समझना चाहिये।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम. पृष्ठ 134)

¤ गुदा से साँप लेने की आज्ञा वेद में

अब आप स्वामी जी के अण्ड बण्ड बकने का उदाहरण भी देख लीजिए-
'हे मनुष्यो, तुम मांगने से पुष्टि करने वाले को स्थूल गुदा इंद्रिय के साथ वर्तमान अंधे साँपों को गुदा इंद्रियों के साथ वर्तमान विशेष कुटिल सर्पों को आंतों से, जलों को नाभि से नीचे के भाग से, अंडकोष को आंड़ों से, घोड़ों लिंग और वीर्य से, संतान को पित्त से, भोजन को पेट के अंगों को गुदा इंद्रिय से और शक्तियों से शिखावटों को निरंतर लेओ.'
-यजुर्वेद 25/7 पर स्वामी दयानंद जी का भाष्य पृ.876

स्वामी दयानंद जी ने अपने पूरे जीवन में ईश्वर की इस आज्ञा का पालन नहीं किया और इस आज्ञा का पालन करना संभव भी नहीं है।
(59) आख़िर कोई मनुष्य अपनी गुदा से अंधे साँपों को कैसे ले सकता है ?
(60) ...और अगर किसी तरकीब से कोई ले भी ले तो आख़िर क्यों ले ले ?
(61) अंधे साँपों को गुदा से लेकर क्या फ़ायदा होगा ?
(62) क्या वास्तव में यह ईश्वर की आज्ञा है ?
(63) ईश्वर मानव जाति को ऐसी आज्ञा क्यों देगा जिससे कोई लाभ न हो ?
(64) क्या यही धर्म है ?
(65) धर्म ऐसा कैसे हो सकता है जिसका पालन ही संभव न हो ?
इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर की आज्ञा कुछ और है। ईश्वर की उस आज्ञा का पता लगाना और उसका पालन करना ही सारे मनुष्यों का धर्म है।
(66) वेद के अश्लील अर्थ करने पर सत्यार्थप्रकाश, द्वादशसमुल्लास, पृ. 279 पर स्वामी दयानंद जी ने महीधरादि को भांड, धूर्त और निशाचरवत् कहा है। उन्होंने खुद वेद का अर्थ अश्लील के साथ निरर्थक भी कर डाला तो अपने इस कर्म पर उन्होंने खुद को क्या कहा या आर्य समाज ने उन्हें क्या कहा ?

यजुर्वेद 25/7 का अर्थ स्वामी दयानंद जी ने स्वयं किया है। इसलिए वह यह भी नहीं कह सकते कि यह वेद का

वास्तविक अर्थ नहीं है। वेद का अश्लील और निरर्थक अर्थ देखकर भी उन्होंने न तो इसकी मज़ाक़ उड़ाई और न ही वेद के ईश्वर की विद्या को व्यर्थ बताया। यही स्वामी जी जब गुरू ग्रंथ साहिब, बाइबिल या क़ुरआन पढ़ते हैं तो उनकी अच्छी भली बात पर भी ऐतराज़ करते हैं। क़ुरआन की बात समझ में भी आ रही हो तो भी उसे नहीं समझते। उनके इस पक्षपात की एक बानगी देखिए-

'3-मालिक दिन न्याय का। तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं। दिखा हमको सीधा रास्ता।। मं.1।सू. 1।आ.3,4,5।।

(समीक्षक) क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता ? किसी एक दिन न्याय करता है ? इससे अंधेर विदित होता है ! उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना ? और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा दूसरे का भी ? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते ? क्या सूधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते ? यदि भलाई सबकी एक है तो मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती हैं।।3।।'

(सत्यार्थप्रकाश, चतुर्दशसमुल्लास, पृष्ठ 361)

स्वामी जी 'सीधा' शब्द का उच्चारण तक ठीक न कर पाते थे। वह 'सीधा' पढ़ते थे लेकिन बोलते 'सूधा' थे, जो कि उनके मन में रमा हुआ था। क़ुरआन का विरोध भी उनके मन में रमा हुआ था। चाहे उसमें परमेश्वर 'सीधे मार्ग' की प्रार्थना ही सिखा रहा हो। तब भी उन्हें उस पर आपत्ति करनी ही थी। जब एक पाठक वेदमंत्र और क़ुरआन, दोनों के साथ स्वामी जी के व्यवहार की तुलना करता है तो उनका अज्ञान, हठ, अहंकार और पक्षपात सब सामने आ जाता है।

भारत में हज़ारों साल तक विधवाओं को सती किया जाता रहा। शादी-ब्याह और ख़ुशी के मौक़ों पर उन्हें दूर रखा गया। उन्हें पुनर्विवाह से रोका गया, उन्हें नियोग के लिए मजबूर किया गया। यहां तक कि सुहागिनों को अश्वमेध यज्ञ में अश्व का लिंग जबरन ग्रहण कराया गया। ऐसी एक घटना में गोरखपुर की रानी के मरने का ज़िक्र स्वामी जी ने भी (सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास, पृष्ठ 195 पर) किया है।

(67) क्या इनके साथ ईश्वर ने तुरंत न्याय कर दिया ?

क़ुरआन पर ऐतराज़ करते समय वह स्वयं की मान्यता भी भूल गए। मनु स्मृति के हवाले से वह स्वयं बताते हैं-

'नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलित गौरिव। शनैरावर्त्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति।। मनु.।।

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता। इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म से नहीं डरते। तथापि निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है।'

(सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास, पृष्ठ 69)

स्वामी जी इस बात पर विचार कर लेते तो क़ुरआन और ईश्वर पर ऐतराज़ न करते। हक़ीक़त यह है कि दुनिया कर्म के लिए है और फल के लिए परलोक है। दुनिया के छोटे से जीवन में पापियों को उनके पापकर्मों का पूरा बदला मिलना संभव नहीं है और न ही मार दिए गए लोगों को पता चल पाता है कि उनके साथ न्याय हो रहा है। उन्हें भी दिखना चाहिए कि हमारे साथ अन्याय करने वालों को कितनी भयानक सज़ा मिल रही है और उन्हें उनकी ख़ुशियां फिर से मिलनी चाहिएं बल्कि बढ़कर मिलनी चाहिएं। न्याय के दिन यही होगा। उस दिन हम दण्ड के भागी न हों। इसलिए हमें केवल एक परमेश्वर की ही भक्ति करनी चाहिए और उसी की आज्ञा का पालन करना चाहिए। इसी के लिए ईश्वर से सहायता की प्रार्थना की जाती है। यही सीधा मार्ग है। इस पर वही ऐतराज़ करता है, जो कि सीधे रास्ते पर न हो।

¤ क़ुरआन और तफ़्सीर का अंतर समझने में असफल

आज मुसलमानों में तो विशेष कुछ नहीं है। विशेष बात तो पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) में है कि वह किसी इंसान से नहीं पढ़े और क़ुरआन जैसी विशेष किताब देकर गए। क़ुरआन की विशेषता यह है कि यह लोगों को आज भी पूरी की पूरी ठीक उसी तरह कंठस्थ है, जैसे कि पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब (स.) इसे अपने सामने कंठस्थ करा गए थे। यही वजह है कि अरब से लेकर हिन्दुस्तान तक हज़ारों हाफ़िज़ों को एक ही क़ुरआन याद है। यह अकेली किताब है, जिसमें आज तक कोई मिलावट न हो सकी। इसमें न तो कोई दुश्मन अपनी दुश्मनी निकालने के लिए कुछ मिला सका और न ही कोई अनुयायी भूल से अपनी बात मिला बैठा। अपनी तरह की यह बिल्कुल अनोखी किताब है। दुनिया में इसके जैसी कोई दूसरी किताब न तो है और न ही कोई बना सकता है। यह ईश्वर का दावा है।

स्वामी जी ईश्वर के इस दावे पर ध्यान देते तो वह धर्म का मार्ग जान लेते लेकिन उन्होंने इस पर भी ऐतराज़ जताया।

जो कि उनके पक्षपात, हठ, अहंकार और अज्ञान को प्रमाणित करता है। देखिए-

8. जो तुम उस वस्तु की ओर से सन्देह में हो जो हमने अपने पैग़म्बर के ऊपर उतारी तो उस जैसी एक सूरत ले आओ और अपने साक्षी लोगों को पुकारो अल्लाह के बिना जो तुम सच्चे हो।। जो तुम और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है, और काफ़िरों के वास्ते पत्थर किये गये हैं।। मं.1। सि.1। सू.2। आ. 23। 24।।

(समीक्षक) भला यह कोई बात है कि उसक सदृश कोई सूरत न बने ? क्या अकबर बादशाह के समय में मौलवी फ़ैज़ी ने बिना नुक़्ते का क़ुरान नहीं बना लिया था ?...

(सत्यार्थप्रकाश, चतुर्दशसमुल्लास, पृष्ठ 363)

स्वामी जी को पता ही नहीं था कि मौलवी फ़ैज़ी ने क़ुरआन की तफ़्सीर (भाष्य) लिखी थी न कि क़ुरआन जैसी कोई किताब। उसकी तफ़्सीर भी क़ुरआन जैसी न थी। क़ुरआन में नुक़्ते वाले शब्द आए हैं जबकि फ़ैज़ी ने अपनी तफ़्सीर में केवल उन शब्दों को लिया था, जिनमें नुक़्ते नहीं होते।

स्वामी जी को यह तक पता न था कि क़ुरआन और तफ़्सीर में क्या अंतर होता है? उनके शिष्यों में से भी किसी ने उनसे नहीं कहा कि स्वामी जी, जो दावा आप कर रहे हैं। वह दावा तो स्वयं फ़ैज़ी ने भी नहीं किया था। स्वामी जी के बाद उनके शिष्य भी इसी अज्ञान और हठ के मार्ग पर चले। आर्य समाज में आज तक कोई विद्वान ऐसा न हुआ जो सत्यार्थ प्रकाश में इस ऐतराज़ के नीचे क्षमा याचना सहित लिखता कि स्वामी दयानंद जी का ऐतराज़ ग़लत है और वाक़ई आज तक क़ुरआन जैसी कोई किताब नहीं लिखी जा सकी। मौलवी फ़ैज़ी ने भी नहीं लिखी थी।

यह बात कैसे लिख दें ?, ऐसा लिखते ही क़ुरआन का दावा सच मानना पड़ेगा। इससे सिद्ध होता है कि क़ुरआन के विरोध की बुनियाद केवल झूठ और नफ़रत है।

¤ अपनी पुस्तकों को मिलावट से बचाने में असफल

क़ुरआन प्रिंटिंग प्रेस के अविष्कार से पहले आया था। उसे हाथों से लिखने में बड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। एक आदमी से दूसरा नक़ल करता था और दूसरे से तीसरा। तब भी वह अपने मूल रूप में है जबकि स्वामी जी ने और उनके अनुयायियों ने प्रिंटिंग प्रेस से अपनी पुस्तकें छपवाईं। फिर भी वे एक न रहीं। स्वामी जी ने वर्षों अध्ययन करके अपनी जो मान्यताएं बनाई थीं। सत्यार्थ प्रकाश का द्वितीय संस्करण छपवाया तो उनमें से कुछ बातों को स्वामी जी ने ख़ुद ही बदल दिया। जैसे कि श्राद्ध आदि के संबंध में। आज सत्यार्थ प्रकाश का पहला संस्करण अप्राप्त है। हालत यह है कि सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को भी हरेक आर्य विद्वान अपनी मर्ज़ी से कतर ब्यौंत कर छाप रहा है। इस सबसे दुखी होकर आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट के प्रधान श्री दीपचन्द आर्य जी ने साफ़ लिखा है कि

'यदि संशोधकों के ये दुष्कृत्य नहीं रोके गये तो भविष्य में महर्षि के ग्रन्थों में अन्य आर्ष ग्रन्थों की भांति प्रक्षेप का पता लगाना दुष्कर हो जायेगा।'

(सत्यार्थप्रकाश, प्रकाशकीय)

यह अज्ञान और हठ नहीं तो और क्या है ?, तिस पर यह कि क़ुरआन की आयत का उर्दू से हिन्दी अनुवाद भी उन्होंने अपने ही जैसे किसी पंडित से करवा लिया। उसने अनुवाद में काफ़ी ग़लतियां की हैं। जिस पर बात की जाए तो एक पुस्तक और तैयार हो जाए।

पवित्र क़ुरआन केवल अपनी सुरक्षा के ऐतबार से ही अपनी तरह की अकेली किताब नहीं है बल्कि यह अकेली किताब है जो बताती है कि मनुओं (माननीय पुरूषों) का चरित्र और धर्म उत्तम था।

¤ मनु के धर्म की शिक्षा देने वाले क़ुरआन का विरोध क्यों?

पवित्र कुरआन 'स्वयंभू मनु' पर लगने वाले आरोप का खण्डन करता है। क़ुरआन में सबसे पहले जिस नबी का ज़िक्र है वह हैं आदम (अलैहिस्-सलाम अर्थात उन पर शांति हो)। आदम नाम की धातु ढूंढी जाए तो यह 'आद्य' धातु से बना प्रतीत होता है। जिसका अर्थ है पहला। 'आद्य' से 'आदिम्' बना, जो कालान्तर व भाषान्तर से आदम हो गया। बिना माँ-बाप के स्वयं से उत्पन्न होने के कारण ही उन्हें वैदिक साहित्य में 'स्वयंभू मनु' कहा गया। 'मनु स्मृति' को उनसे ही जोड़ा जाता है। मनु स्मृति भी उन्हें स्वयं से उत्पन्न होने वाला सबसे पहला मनुष्य ही बताती है। उनके काल में राजा, महाराजा और युद्ध नहीं होते थे। उनके काल में लूटमार, अपहरण और बलात्कार नहीं होते थे। उन्होंने इनके विषय में कोई व्यवस्था कभी नहीं दी। यह बात क़ुरआन से पता चलती है।

¤ मनु के श्लोक एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख बावन हज़ार नौ सौ छहत्तर वर्ष पुराने मानना ग़लत है

'यह जो वर्त्तमान सृष्टि है, इसमें सातवें (7) वैवस्त मनु का वर्त्तमान है, इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं। स्वायम्भव 1, स्वारोचिष 2, औत्तमि 3, तामस 4, रैवत 5, चाक्षुष 6, ये छः तो बीत गए हैं और सातवां वैवस्वत वर्त्त रहा है.' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, अथ वेदोत्पत्ति., पृ.17)

स्वामी जी ने बताया है कि एक मन्वन्तर में 71 चतुर्युगियां होती हैं। एक चतुर्युग में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं। सतयुग में 1728000 वर्ष, त्रेता में 1296000 वर्ष, द्वापर में 864000 वर्ष और कलियुग में 432000 वर्ष होते हैं। इन चारों युगों में कुल 4320000 वर्ष होते हैं। 71 चतुर्युगियों में कुल 306720000 वर्ष होते हैं। छः मन्वन्तर अर्थात 1840320000 वर्ष पूरे बीत चुके हैं और अब सातवें मन्वन्तर की 28वीं चतुर्युगी चल रही है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखे जाते समय तक सातवें मन्वन्तर के भी 120532976 वर्ष बीत चुके थे। इस तरह स्वामी जी के अनुसार उस समय तक स्वयंभू मनु को हुए कुल 1960852976 वर्ष, एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख बावन हज़ार नौ सौ छहत्तर वर्ष बीत चुके थे।

स्वामी जी ने जो काल स्वयंभू मनु का बताया है, उस समय धरती पर मानव सभ्यता नहीं पाई जाती थी। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। इसलिए मनु स्मृति को स्वयंभू मनु से जोड़ना ग़लत है। उसमें जो श्लोक मनु के नाम से कहे गए हैं, वास्तव में उन्हें किसी और ने उनके नाम से लिखा है। मनु स्मृति का स्वयंभू मनु से कोई संबंध ही नहीं है। यही कारण है कि मनु स्मृति से स्वयंभू मनु के धर्म का पता लगाना संभव नहीं है। पाठक उससे जिस वर्ण व्यवस्था का पता लगाएंगे, उसका पालन करना संभव नहीं है।

हालाँकि स्वामी दयानंद जी ने मनु स्मृति को प्रक्षिप्त मानकर उसके कुछ श्लोकों को नहीं माना है लेकिन उन्होंने उसके जिन श्लोकों को मनु का समझ लिया। वे भी प्रक्षिप्त हैं और बाक़ी का भी कुछ पता नहीं है कि उन्हें कब और किसने लिखा है?

इस सत्य को न जानने के कारण ही स्वामी जी ने मनु स्मृति की वर्ण व्यवस्था को धर्म समझ लिया और वह उसमें बताई गई ऊँचनीच और छूतछात के नियमों का कड़ाई से पालन करते रहे। इसी प्रक्षिप्त मनु स्मृति के आधार पर वह मानते हैं कि धर्म के अनुसार दासीपुत्र को मंत्री नहीं बनाया जा सकता। इन बातों को वह ऋषियों का धर्म बताते हैं। अन्याय की बात को धर्म बताकर वह लोगों को ऋषियों की और उनके धर्म की निंदा करने का अवसर देते हैं। यह बात वह क्यों न समझ पाए कि ये बातें मनु स्मृति में क्षेपक हैं?

इन बातों को हटा दिया जाए तो वैदिक धर्म और इसलाम में कोई मूलभूत अन्तर शेष नहीं रह जाता।

¤ प्रक्षिप्त ग्रन्थों के विषय में स्वामी जी की राय

स्वामी दूसरों को यह उपदेश देते थे कि

''जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे। इसलिए 'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्याज्यमिति' असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को।'' (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय0 पृष्ठ 48)

स्वामी मनु स्मृति को प्रक्षिप्त भी मानते हैं और उससे प्रमाण भी देते हैं, क्यों ?, उन्हें तो अपने उपदेश पर आचरण करते हुए मनु स्मृति को त्याग देना चाहिए था।

जिस उपदेश पर वह दूसरों से आचरण की अपेक्षा करते थे, उस पर वह खुद आचरण करते तो उन्होंने मनु स्मृति से प्रमाण न दिया होता।

¤ मनु की नहीं, उनके विरोधियों की देन है ऊँचनीच

आदम हों या नूह हों, किसी भी मनु ने ऊँच-नीच और छूतछात को कभी धर्म नहीं बताया। पवित्र क़ुरआन उन पर लगने वाले इस आरोप का भी खण्डन करता है।

जलप्लावन वाले एक अन्य मनु का वर्णन भी क़ुरआन में 'नूह' (अलैहिस्-सलाम अर्थात उन पर शांति हो) के नाम से मिलता है। क़ुरआन बताता है कि आदरणीय नूह (उन पर शांति हो) पर श्रद्धा रखने वाले वही लोग थे जिन्हें तत्कालीन समाज में नीच और तुच्छ समझा जाता था। समाज के तथाकथित उँचे लोगों ने आदरणीय नूह (उन पर शांति हो) पर इसी बात को लेकर ऐतराज़ भी किया लेकिन उन्होंने समाज के दलितों-वंचितों को खुद से दूर नहीं किया। देखिये -

'इस पर उसकी क़ौम के सरदार, जिन्होंने इनकार किया था, कहने लगे हमारी दृष्टि में तो तुम हमारे ही जैसे आदमी हो

और हम देखते हैं कि बस कुछ लोग ही तुम्हारे अनुयायी हैं जो पहली दृष्टि में ही हमारे यहाँ के नीच हैं। हम अपने मुक़ाबले में तुम में कोई बड़ाई नहीं देखते हैं बल्कि हम तो तुम्हें झूठा समझते हैं।' (सूरा-ए-हूद, 27)

देखिए, पवित्र कुरआन का चमत्कार ! पूरी धरती पर वह अकेली किताब है जो कहती है कि मनु ने जातिवाद नहीं फैलाया जबकि यह बात उनका कोई भी अनुयायी नहीं कहता। कोई नहीं कहता कि मनु ने सबको बराबरी का दर्जा दिया। जिनको तत्कालीन समाज ने नीच समझा, सत्य को अपना कर वही श्रेष्ठ बने, ईश्वर के दण्ड से बचे और बाद में मानव जाति के जनक भी मनु के साथ यही लोग हुए। जिस बात को कोई नहीं कहता, कोई नहीं जानता, उसकी चर्चा कुरआन मे कैसे है ? और वह भी आज से लगभग 1430 वर्ष पहले।

क्या यह सोचने का विषय नहीं है कि पवित्र कुरआन की किसी भी सूरत का नाम महामना मुहम्मद (स.) के माँ- बाप, रिश्तेदारों और साथियों में से किसी के भी नाम पर नहीं है जबकि एक सूरत का नाम 'नूह' है ?

¤ क़ुरआन में मनु का सम्मान सहित वर्णन

पूरे कुरआन की हज़ारों आयतों में महामना मुहम्मद (स0) का नाम सिर्फ 4-5 बार आया है जबकि मनुओं में से एक जल प्लावनन वाले मनु का नाम 'नूह' लगभग 45 बार आया है। मक्का में नूह के अनुयायी नहीं थे कि उनका नाम लेकर उनके मानने वालों से मदद पाना वांछित हो और न ही अरब के लोग उन्हें जानते थे बल्कि स्वयं महामना मुहम्मद (स0) भी कुरआन के अवतरण से पहले यह सब नहीं जानते थे। ईश्वर कहता है-

'ये परोक्ष की खबरें है जिनकी हम तुम्हारी ओर प्रकाशना कर रहे हैं। इससे पहले न तो तुम्हें इनकी खबर थी और न ही तुम्हारी क़ौम को।' (सूरा-ए-हूद,49)

मनु स्मृति के नाम से किसी ने भृगु आदि कई पुरूषों के श्लोक संकलित कर लिए। उनमें भी समय समय पर मिलावट होती रही। अब कोई यह नहीं कह सकता कि ये श्लोक भृगु आदि के ही हैं या इन्हें भी उनके नाम से अन्य पंडितों ने ही बनाए हैं ?

मनु स्मृति में अच्छी बातें भी हैं। जिससे पता चलता है यह संकलन शुरू में सत्पुरूषों के हाथों में रहा होगा। बाद में, जब अच्छे लोग कम हो गए और वे भी ध्यान और चिंतन के लिए जंगल में जा बसे तो समाज में बुरे लोग हावी हो गए। उन्होंने ऊँचनीच, छूतछात, अपहरण, बलात्कार, नियोग और ब्याज के लेन देन को धर्म सम्मत दिखाने के उद्देश्य से श्लोक बनाकर मनु स्मृति में सम्मिलित कर दिए। पुराण आदि में अश्लील कथाएं भी ऐसे ही ग़लत लोगों ने लिखी हैं। बुरे लोगों ने अपनी चौधराहट क़ायम करने के मक़सद से यह सब किया। इससे वे दूसरों का आर्थिक और यौन शोषण करते रहे और धर्म ग्रन्थों से प्रमाण देकर अपने बुरे कर्मों को धर्म बताते रहे। धर्मग्रन्थ ग़लत नहीं हैं बल्कि वे ग़लत हाथों में पड़े तो बाद में उनमें ग़लत बातें मिला दी गईं। दूसरों के कर्म का ज़िम्मेदार मनु को ठहराना अपने पिता मनु के साथ ज़ुल्म करना है।

¤ मनुः एक आदर्श मनुष्य

आज जमीन पर बहुत से ईश्वरीय ग्रन्थ हैं। जिनमें विश्वास का दावा करोड़ों लोग करते हैं। वे लोग अपने नबियों और ऋषियों पर आस्था रखते हैं लेकिन उन पर झूठे लांछन भी लगाते हैं, आदम से लेकर ईसा तक, हर एक ईशदूत पर। कारण यह है कि ईसा, मूसा, लूत, और मनु सबकी शिक्षाएं बिगाड़कर रख दीं। कुरआन बताता है कि ये सभी ईश्वर के दूत थे हरेक बुराई से पाक और मासूम थे और सबने मानव जाति को एक ही धर्म की शिक्षा दी।

'उस (ईश्वर) ने तुम्हारे लिए वही धर्म निर्धारित किया जिसका आदेश उसने नूह को दिया था।' (पवित्र कुरआन, अश्-शूरा, 13)

पैग़म्बर मुहम्मद साहब (स.) ने कोई नया धर्म नहीं चलाया बल्कि ईश्वर ने उन्हें उसी धर्म का पालन करने के लिए कहा, जिसका पालन उनसे पहले नूह (जल प्लावन वाले मनु) करते थे। जो कोई वास्तव में मनु का धर्म जानना चाहे तो वह पवित्र कुरआन में उनका वृतान्त पढ़ ले।

¤ 'असली वेद' को पढ़ने के लिए चाहिए प्रकाश और दृष्टि

क़ुरआन का एक नाम 'फ़ुरक़ान' अर्थात कसौटी (25,1) भी है। वेद-स्मृतियों में कौन सी बात धर्म की है, इस कसौटी पर परखने के बाद हरेक इनसान यह सरलता से जान सकता है। वेद के गूढ़ अर्थों को भी पवित्र कुरआन की स्पष्ट शिक्षाओं के आधार पर समझना आसान है। कुरआन का एक नाम 'नूर' (प्रकाश) भी है।

'अतः ईमान लाओ अल्लाह पर और उसके रसूल पर और उस प्रकाश पर जिसने हमने अवतरित किया है।' (पवित्र कुरआन, 64,8)

हमने इसी प्रकाश में 'असली वेद' खोजा तो हमें वह सुरक्षित मिला।

हिन्दू भाईयों में यह बात जो फैली हुई है कि 'असली वेद' खो गए हैं, ग़लत नहीं है। हक़ीक़त यह है कि ज़्यादातर लोग 'असली वेद' को पहचानने की क्षमता खो चुके हैं। केवल कुरआन के प्रकाश में ही 'असली वेद' को जाना जा सकता है। हमने ऐसे ही जाना है। इसीलिए हम वेदों का आदर करते हैं।

वेद का ज्ञान किसने दिया?

वेद का ज्ञान सबसे पहले किसे मिला?

वेद कैसे खोए?

वेद कहाँ खोए?

इन बातों को जान लिया जाए तो असली वेद कैसे मिलते हैं? इस विषय को लिखा जाए तो एक और किताब तैयार हो जाएगी।

जो लोग अपने अहंकार के कारण पवित्र कुरआन को ग्रहण नहीं करते, वास्तव में वे 'असली वेद' तक पहुंचने के एकमात्र प्रामाणिक साधन से स्वयं को वंचित करते हैं। इसीलिए कहा गया है-

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्

'बुद्धिहीन लोग ग्रन्थ देखते हुए नहीं देखते और सुनते हुए नहीं सुनते।' (ऋग्वेद 10,71,4)

'और उनके पास आँखें हैं वे उनसे देखते नहीं और उनके पास कान हैं वे उनसे सुनते नहीं वे पशुओं की तरह हैं।' (पवित्र कुरआन 7,179)

¤ धरती का एकमात्र अजर अमर और अक्षय ग्रन्थ

पवित्र कुरआन अपनी सच्चाई का सबूत खुद ही है। हज़ारों साल में धरती के मनुष्यों ने करोड़ों किताबें लिखी हैं। जो समय गुज़रने के बाद या तो पूरी तरह मिट गईं या उनमें कुछ घटा-बढ़ा दिया गया है। आज भी जब कोई लेखक किसी विषय पर कोई किताब लिखता है तो उसके द्वितीय संस्करण में स्वयं ही फेरबदल करने पर मजबूर हो जाता है ।

सारी धरती पर मौजूद करोड़ों किताबों के बीच में पवित्र कुरआन ही एकमात्र ऐसी अक्षय और अजर अमर किताब है, जो आज भी उसी रूप में है जैसी कि वह बिल्कुल शुरू में थी उसका दूसरा एडीशन नहीं है। 1400 वर्ष से भी ज्यादा समय बीतने के बावजूद भी वह अपने मूल और शुद्ध रूप में सबको उपलब्ध है। उसमें न तो कुछ बढ़ाया जा सकता है और न ही घटाया जा सकता है। करोड़ों लोग उसे रोजाना पढ़ते हैं और लाखों लोगों ने उसे कण्ठस्थ कर रखा है। ऐसी अजर अमर किताब, एक अजर अमर ईश्वर की ओर से ही संभव है।

इसकी आयतों में मनुष्य के मन में उठने वाले सभी प्रश्नों और उसे पेश आने वाली सभी समस्याओं का हल तर्क और ज्ञान के आधार पर सरल रूप में पेश किया गया है। व्यक्ति और समाज को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में नैतिकता, अध्यात्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था, मनोविज्ञान और प्रत्येक क्षेत्र में साफ और सीधे निर्देश दिए गए हैं, जिन्हें नजरअन्दाज करके उन्नति और कल्याण संभव ही नहीं है। धरती, मौसम और मनुष्य के जन्म के सम्बन्ध में जितनी बातें बताई गई हैं, आज आधुनिक विज्ञान ने उनकी सत्यता को स्वीकार किया है। अर्थव्यवस्था पर पवित्र कुरआन के नियम आज दुनिया को मार्ग दिखा रहे हैं। दुनिया के अर्थशास्त्री मान रहे हैं कि विश्व की अर्थव्यवस्था को मन्दी से उबारने के लिए एकमात्र उपाय कुरआन की ब्याज रहित अर्थव्यवस्था को अपनाना है

'यह अनुस्मरण (कुरआन) निश्चय ही हमने अवतरित किया है और हम स्वयं इसके रक्षक है।' (सूरा अल-हिज्र,9)

कुरआन दयालु पालनहार की ओर से एक Reminder है, जो अपने से पूर्व अवतरित 'ज्ञान' की पुष्टि करता है। इसका रक्षक ईश्वर स्वयं है। कुरआन में प्राचीन ऋषियों-नबियों का चरित्र और उनका धर्म सुरक्षित है। इस प्रकार ईश्वर ने मानवता के लिए अपने धर्म की पुनर्स्थापना भी की है और अपने धर्म प्रचारक ऋषियों पर लगने वाले झूठे आरोपों का निराकरण भी कर दिया है। इसी के साथ उसने अपनी दया से धर्मज्ञान भुला चुके राष्ट्रों को फिर से एक मौक़ा दिया है जिसके जरिये वो अपने-अपने ऋषियों के सिद्धान्त और व्यवहार को जान सकते हैं और उन्हें अपनाकर अपने जन्म का उद्देश्य पूरा कर सकते हैं।

(67) ऐसा महान और सुरक्षित ज्ञान, पवित्र कुरआन जब मनु को निर्दोष निष्पाप और समाज में बराबरी देने वाला बताता है तो कुरआन के कथन को स्वीकारने में हिचकिचाहट क्यों?

¤ स्वामी जी की कसौटी पर ही उनका मत झूठा ठहरा

स्वामी जी क़ुरआन का विरोध करते हुए यह तक कह गए-

'जो दूसरे मतों को कि जिसमें हजारों क्रोड़ों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने को सच्चा उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है ?' (सत्यार्थप्रकाश, चतुर्दश. पृष्ठ सं. 378)

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के 13 अध्यायों में नानक पंथ, कबीर पंथ, दादू पंथ, गोकुलिगोस्वामी मत, स्वमीनारायण मत, ब्राह्म समाज मत, शाक्तवैष्णव मत, शैव मत, वाम मार्ग, बौद्ध मत, जैन मत, चारवाक मत, अद्वैत मत, ईसाई मत आदि को झूठा बताया और 14वें अध्याय में फ़रमाया कि 'जो दूसरे मतों को कि जिसमें हजारों करोड़ों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने को सच्चा उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है ?'

- स्वामी जी को चाहिए था कि जो कुछ वह कह रह थे, उस पर वह अपना मत भी परख कर देख लेते।
- क्या अपने कथन के अनुसार उनका मत सबसे ज़्यादा झूठा मत सिद्ध नहीं होता?

¤ स्वामी जी वर्ण व्यवस्था को कर्म के आधार पर मानने में असफल रहे

स्वामी जी के जीवन की एक अन्य घटना में भी उनके अज्ञान और पक्षपात को देखा जा सकता है-

''स्वामी जी रायपुर पहुंचे। वहां माधवदास की कुटिया में रूके। वहां ठाकुर हरिसिंह सपरिवार उनसे मिलने आए। उन्होंने स्वामी जी को एक स्वर्ण मुद्रा और पांच रूपये भेंट में दिए। स्वामी जी ने उनसे राज्य के मंत्री का नाम पूछा।
ठाकुर साहब ने कहा-'शेख़ ईलाही बख़्श हैं। अभी वे जोधपुर गए हैं। फ़िलहाल उनका कार्य उनका भतीजा करीमबख़्श्श देखता है।'
स्वामी जी ने कहा-'यवनों को राज्य का मंत्री न बनाओ, क्योंकि वे दासी पुत्र हैं।'
यह सुनना था कि वहां बैठे करीमबख़्श सहित कुछ मुसलमान उनसे चिढ़ गए।
अगले दिन ये लोग एक क़ाज़ी को लेकर स्वामी जी के पास आए। क़ाज़ी ने स्वामी जी से पूछा-'आपने इन्हें दासी पुत्र कैसे कहा ?'
स्वामी जी बोले-'कुरान में लिखा है।'
क़ाज़ी ने कहा-'कहीं नहीं लिखा है।'
स्वामी जी ने कुरान मंगाई। बोले-'देखिए, सूरत अनक सून में लिखा है-उसी साल (खुदा ने) उसे (इबराहीम को) हाजरा (के गर्भ से) जो सारा की दासी थी, ईस्माइल प्रदान किया।'
क़ाज़ी बोला-'वह दासी तो थी, परन्तु उन्होंने निकाह कर लिया था।'
स्वामी जी बोले-'फिर भी थी तो वह दासी ही। आपके दासी पुत्र होने में क्या सन्देह है ?'

यह सुन क़ाज़ी चुप हो गया।

(युगप्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानंद, पृ. 137)

इस घटना से मुसलमानों के प्रति स्वामी दयानंद जी का पक्षपात और द्वेष भी सामने आ जाता है और उनका अज्ञान भी।

1- पवित्र क़ुरआन में 'सूरत अनक सून' नाम की कोई सूरत ही नहीं है।

2- सारे यवन अर्थात मुसलमान हज़रत इस्माईल (अलैहिस्-सलाम) की सन्तान नहीं होते। अफ़ग़ान, मुग़ल, ईरानी और दूसरी नस्लों के लोग भी मुसलमान हैं और मुसलमानों में अधिकतर यही लोग हैं। इसलिए यह कहना ग़लत है कि मुसलमान दासी पुत्र होते हैं।

3- दासी होना परिस्थिति की देन है, न कि कोई चारित्रिक दोष। दासी से निकाह करके उसे पत्नी बना लिया जाए तो वह पत्नी बन जाती है। निकाह के बाद पत्नी केवल पत्नी होती है, वह दासी नहीं रह जाती। यह कॉमन सेंस की बात है।

4- यह अजीब बात है कि स्वामी जी बिना विवाह किए नियोग से उत्पन्न पुत्र को तो राजा होने के योग्य मानते हैं और निकाह के बाद पैदा होने वाली वैध संतान को वह मंत्री होने के योग्य भी नहीं मानते।

5- स्वामी जी के कथन से यह पता चलता है कि वह पद के लिए व्यक्ति की योग्यता के बजाय उसके जन्म को अधिक महत्व देते थे। अगर कोई दासी हो तो उसके वंश में 4 हज़ार वर्ष बाद पैदा होने वाला योग्य व्यक्ति भी मंत्री नहीं बन सकता। इस तरह स्वामी दयानंद जी की असली विचारधारा सामने आ जाती है कि वह वर्ण और कर्म का निश्चय जन्म

के आधार पर ही करते थे।

6- ऐसा करके उन्होंने मुसलमानों के लिए और दासी पुत्रों के लिए वैदिक धर्म का द्वार स्वयं ही बंद कर दिया। सभी बराबरी और सम्मान चाहते हैं।

¤ इसलाम की जानकारी और शिष्टाचार का घोर अभाव

इस घटना का वर्णन पण्डित लेखराम कृत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र' (पृष्ठ 539 व 540) में देखा गया तो स्वामी दयानन्द जी को अज्ञान और नफ़रत के शिखर पर पाया। देखिए-

''महाराज दुग्धपान करके कुर्सी बिछवाकर स्वयं बैठ गए और उनको बुलवाया तथा फर्श पर बिठा दिया। आते ही काजी जी ने प्रश्न किया-आप हमको दासी पुत्र कैसे बतलाते हो ?

स्वामी जी-अपने कुरान शरीफ को देखो। इसराईल जिसको इब्राहीम कहते हो उसकी दो पत्नियां थीं-एक ब्याही हुई 'सारा', दूसरी दासी 'हाजरा' जिसको उसने घर में डाला हुआ था। अब देखिये कि सारा से अंग्रेज लोग और हाजरा से तुम लोग उत्पन्न हुए, फिर दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है?

काजी जी-कुरान में ऐसा नहीं लिखा।

स्वामी जी ने रामानन्द ब्रह्मचारी को कहा कि कुरान का पुस्तक लाओ। पुस्तक लाकर काजी जी को दिखलाया (कुरान सूरये अन्कबूत-उसी वर्ष में इस्माइल को हाजरा ने उत्पन्न किया जो सारा खातून की दासी थी। खंड 2, पृष्ठ 167)

काजी जी-वह दासी तो थी परन्तु निकाह (विवाह) कर लिया था।

स्वामी जी-फिर भी वास्तव में तो दासी ही है तो फिर आप के दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है?

इस पर काजी जी निरूत्तर हो गये। मुसलमान सब देखते के देखते रह गये।

इस समय कुरान को स्वामी जी ने हाथ से पृथिवी पर रख दिया। काजी जी ने कहा-आपने यह क्या किया कि कुरान को पांव में रख दिया।

स्वामी जी-काजी साहब ! तनिक विचार करो, क्या काजी नाम ही के कहलाते हो? कागज और स्याही कैसे बनता है और छापाखाना में किस पर कागज छापते हैं और कलम (लेखनी) क्या चीज है और कहां से उत्पन्न होती है ?

इस पर निरूत्तर होकर काजी जी उठ खड़े हुए और उनके साथ सब यवन शान्त होकर चले गये।''

¤ समीक्षा

1. स्वामी दयानंद जी को यह तक पता नहीं था कि हज़रत इबराहीम अलैहिस्‌-सलाम को इसराईल नहीं कहा जाता। इसराईल तो उनके पोते याक़ूब अलैहिस्‌-सलाम को कहा जाता है जो कि हज़रत इसहाक़ अलै. के बेटे थे। जिस बात का सही पता न हो, उसके विषय में विद्वान कभी नहीं बोलते।

2. सूरा ए अन्कबूत में भी यह आयत नहीं है। क़ुरआन का नाम लेकर झूठ बोलना भी विद्वान का काम नहीं है।

3. सभी लोग एक दूसरे के धार्मिक ग्रन्थों का आदर करते हैं। यह सामान्य शिष्टाचार है। इसी से समाज में शान्ति बनी रहती है और सब एक दूसरे के काम आते हैं। सब एक दूसरे के ग्रन्थों का निरादर करें तो लोग एक दूसरे से लड़ पड़ेंगे और समाज की शान्ति नष्ट हो जाएगी।

4. क़ुरआन शरीफ़ को मुसलमानों के सामने अपने पांव के पास ज़मीन पर रखने का काम वही शख़्स कर सकता है, जिसे सभ्य समाज में रहने का तरीक़ा न आता हो या फिर उसके दिल में क़ुरआन और मुसलमानों के प्रति नफ़रत भरी हो। उनकी इस हरकत को कोई भी अच्छा नहीं कह सकता। स्वामी जी की बात सुनकर और क़ुरआन के साथ अपमानजनक रवैया देखकर मुसलमान समझ गए कि इस आदमी के ज्ञान और सभ्यता का क्या स्तर है और इसकी मंशा झगड़ा पैदा करने के सिवा कुछ नहीं है ताकि ठाकुर हरिसिंह ईलाहीबख़्श को मंत्री पद से हटा दें। इसीलिए वे वहां से शान्त होकर चले गए। अगर क़ाज़ी जी सब्र से काम न लेते तो स्वामी जी ने वहां बलवा करवाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। स्वामी जी जीवन भर हिन्दू मुस्लिम एकता पर इसी प्रकार कुठाराघात करते रहे। उनके चरित्र से प्रेरित होकर समाज में उपद्रव फैलाने वाले बलवाई आज भी धर्म ग्रन्थों के साथ ऐसी अपमानजनक हरकतें करते रहते हैं।

5. आपस में एकता और विश्वासपूर्वक व्यवहार करने वाले हिन्दू-मुसलमानों में उन्होंने फूट डालने का यह प्रयास ऐसे समय किया जबकि देश पर अंग्रेज़ शासन कर रहे थे और भारतीयों को आपसी एकता की सख़्त ज़रूरत थी। उनके विचार आज भी नफ़रत और भ्रम फैला रहे हैं।

¤ हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालने में सफल

'उन्हीं दिनों सुना गया था कि उस रियासत में मुस्लिम शासनकाल के मुसलमान बने हिन्दुओं के साथ उनकी जाति के हिन्दू लोग पूर्ववत् सम्बन्ध करते हैं; वे हिन्दूपन की मूर्खता के कारण बेटी देते तो हैं किन्तु लेते नहीं, जैसा कि जोधपुर राज्य के शैव प्रदेश में अभी तक प्रथा है, जिससे वहां के लोग साधारणतया परिचित हैं। स्वामी जी ने बुलाकर समझाया कि ऐसा अनर्थ क्यों करते हो ? जो तुम्हारे धर्म को नहीं मानते उनसे सम्बन्ध करना योग्य नहीं।' (म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 537)

¤ अंग्रेज़ी राज को 'सुराज' बताया

'मुसलमानों की जब चलती थी तो उन्होंने हम लोगों का तलवार से खण्डन किया। अब क्या अन्धेर है कि वह मुझे बातों से खण्डन करने में भी रूकावट डालते हैं ? ऐसा **सुराज** पाकर किसी की पोल खोलने में कभी रूक सकता हूं?' (म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 494)

¤ अंग्रेज़ ने ख़ुश होकर स्वामी जी से 'हाथ मिलाया'

स्वामी जी स्वयं बताते हैं-

'जनरल राबर्ट्स साहब इतने प्रसन्न हुए कि हम से आकर हाथ मिलाया'

(म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 537)

अंग्रेज़ बहादुर ने ख़ुश होकर हाथ मिलाया तो स्वामी जी ने भी अपना हाथ आगे बढ़ा दिया ?
वह अपनी मान्यता भी भूल गए कि गोमाँस और मदिरा का सेवन करने वाले से हाथ नहीं मिलाना चाहिए। केवल हाथ जोड़ कर नमस्ते करने से भी काम चल सकता था। इस तरह अंग्रेज़ अधिकारी को वैदिक संस्कृति का परिचय भी मिल जाता।

यदि कोई आर्य समाजी 'हाथ मिलाने' को अलंकार मानता है तो 'अंग्रेज़ शासक ने स्वामी जी से हाथ मिलाया' पर और ज़्यादा प्रश्न खड़े होंगे।

¤ अंग्रेज़ों ने स्वामी जी की रक्षा की

'यह भी कहते थे कि यदि अंग्रजी राज्य न होता तो मैं जो इतनी बार फर्रूखाबाद आया, ब्राह्मण मुझे कभी न छोड़ते, किसी से मरवा डालते।' (म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 131)

¤ 'डिवाइड एंड रूल': अंग्रेज़ों की नीति

स्वामी दयानन्द जी के बहुत बाद सुभाषचंद बोस ने अंग्रेज़ों की नीति का तीन शब्दों में खुलासा किया-'डिवाइड एंड रूल' अर्थात फूट डालो और राज करो।

स्वामी जी का मत प्रचार भारतीय समाज को बाँट रहा था। अंग्रेज़ों का मक़सद स्वामी जी के ज़रिये ख़ूब सिद्ध हो रहा था। इसीलिए वे स्वामी जी की रक्षा कर रहे थे जबकि दूसरी ओर उन्होंने सन 1857 के विद्रोहियों को और उनके समर्थकों को चुन चुन कर मार डाला था।

¤ देशभक्त अपराधी, अंग्रेज़ महारानी दयालु माता?

स्वामी जी के उपदेशों से आर्य समाजियों में अंग्रेज़ भक्ति परवान चढ़ रही थी। अंग्रेज़ यह देखकर ख़ुश थे। आर्य समाज के महान पुरोधा मुंशीराम जिज्ञासु जी के लेखन में यह मानसिकता साफ़ देखी जा सकती है। वह स्वामी जी के जीवन चरित्र की भूमिका में लिखते हैं-

'सांसारिक हलचल का परिणाम सन् 1857 का विद्रोह था। उस अन्धकारपूर्ण काल में जो कुछ मार-काट हुई, जिस-जिस प्रकार के अत्याचार दोनों ओर से किये गये, उनका वर्णन करना हमारा काम नहीं है। हमें इस स्थान पर केवल उसके परिणाम से प्रयोजन है। अन्ततः महारानी का कोमल हृदय हिल गया। उनके पास प्रत्येक अत्याचार की रिपोर्ट पहुंच चुकी थी परन्तु विद्रोहियों को उनके अपराधों के दण्ड देकर हमारी महारानी ने अपना दया का हाथ फैलाया। उन्होंने समझ लिया कि प्रजा पुत्र के समान है। उन्हें विश्वास हो गया कि अपने कर्तव्य का भार वणिकों को सौंपने का यही परिणाम होना था। अपने कर्मों का फल भारतवासी भुगत चुके थे। अब पुत्रों का अधिकार है कि माता से सीधे बातचीत करें। इस शुभ सूचना की घोषणा महारानी ने कर दी जिसको

भारतवर्ष में फैलाने वाला लार्ड केनिंग था।' (म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 30)

¤ भारत की स्त्रियाँ व्यभिचारिणी, अंग्रेज़ महिलाएं सदाचारिणी?

स्वामी जी प्रश्नोत्तर के माध्यम से जिस प्रकार का ज्ञान दिया करते थे। उसे देखकर अफ़सोस ही होता है-

'**प्रश्न**-भारत के लोग स्त्रियों को, इस प्रयोजन से कि वे व्यभिचारिणी न हों परदे में रखते हैं और ईसाई अपनी स्त्रियों को परदे में नहीं रखते और स्थान-स्थान पर भ्रमण कराते हैं। इतना होने पर भी भारत की स्त्रियां ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी दिखाई देती हैं (इसका क्या कारण है?)

उत्तर-स्त्रियों को परदे में रखना आजन्म कारागार में डालना है। जब उनको विद्या होगी वह स्वयं अपनी विद्या के द्वारा बुद्धिमती होकर प्रत्येक प्रकार के दोषों से रहित और पवित्र रह सकती हैं। परदे में रहने से सतीत्व रक्षा नहीं कर सकतीं और बिना विद्याप्राप्ति के बुद्धिमती नहीं हो सकती हैं। परदे में रखने की प्रथा इस प्रकार प्रचलित हुई कि जब इस देश के शासक मुसलमान हुए तो उन्होंने शासन की शक्ति से जिस किसी की बहू-बेटी को अच्छी रूपवती देखा, उसको अपने शासनाधिकार से बलात् छीन लिया। उस समय हिन्दू विवश थे; इस कारण उनमें सामना करने की सामर्थ्य न थी। सो मूर्खों ने उसको पूर्वजों का आचार समझ लिया। देखो, मेमों अर्थात् अंग्रेज़ों की स्त्रियों को, वे भारत की स्त्रियों की अपेक्षा कितनी साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी होती हैं।' (म. दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृष्ठ 289)

- स्वामी जी परदे के विषय में चाहे जो कहते लेकिन कम से कम वह यह तो कह देते कि नहीं, भारत की स्त्रियां ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी नहीं होतीं। तुम्हारी यह धारणा बिल्कुल झूठ है।
- स्वामी जी महिलाओं के लिए सह-शिक्षा, गोमाँसाहार, माँसाहार, मदिरा सेवन, स्त्री-पुरूषों के सामूहिक नृत्य और पर-पुरूषों के देखने व छूने को सदाचार के विपरीत मानते थे। अंग्रेज़ महिलाएं यह सब करके भी उनकी नज़र में भारत की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी ठहरीं?
- अंग्रेज़ महिलाएं स्वामी दयानंद जी की शिक्षा के बिना ही साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी बन सकती हैं तो फिर भारत की नारियां भी उनका अनुकरण करके अपने अंदर इन अच्छे गुणो को पैदा कर सकती हैं।
- स्वामी जी का यह कहना फ़िज़ूल ही ठहरा कि 'अच्छा तो वेदमार्ग है, जो पकड़ा जाय तो पकड़ो, नहीं तो सदा गोते खाते रहोगे।' (सत्यार्थ., एकादश, पृष्ठ 248)
- जैसे भारतीय स्त्रियों के अधिक व्यभिचारिणी होने की घृणित कल्पना बिल्कुल झूठी है। ऐसे ही यह भी सरासर झूठ है कि हिन्दुओं ने अपनी औरतों को परदा इसलिए करवाया क्योंकि मुसलमान अपने शासन काल में उनकी औरतों को सुन्दर देखकर उठा ले जाया करते थे।
- क्या मुसलमान हिन्दू पुरूषों की सुन्दरता देखकर नहीं समझ सकते थे कि उनके घरों की औरतें भी सुन्दर होंगी ?
- घूंघट निकालने वाली हिन्दू महिलाएं भी अपनी कमर व नाभि प्रदेश खुला रखती हैं। उनके हाथ, पैर, कमर और पेट को देखकर उनके रूप, रंग और रख-रखाव का अंदाज़ा कोई भी लगा सकता है। ऐसे में परदा किसी अपहरणकर्ता के विचार को कैसे रोक सकता है ?
- क्या मुसलमानों के शासन काल से पहले आर्य राजा हिन्दू औरतों को जबरन उठा कर नहीं ले जाते थे ?
- रावण के द्वारा सीता जी के अपहरण की घटना सब जानते हैं।
- भारतीय इतिहास बताता है कि पितामह भीष्म भी 3 हिन्दू राजकुमारियां अंबा, अंबालिका और अंबिका, का अपहरण करके ले आए थे। जो कि काशीराज की बेटियां थीं। जिस काल में राजकुमारियों के अपहरण होते रहे हों, उस काल में आम हिन्दू लड़कियां कितनी सुरक्षित होंगी ?, समझा जा सकता है। आर्य राजाओं की ऐसी बहुत सी घटनाएं इतिहास में दर्ज हैं। जो कि मुसलमानों के शासन काल से पहले की हैं।
- स्वामी दयानन्द जी ने अपहरण और बलात्कार को भी विवाह का ही एक प्रकार माना है। स्वामी जी ने मनु स्मृति के आधार पर वैदिक धर्म में विवाह के 8 प्रकार बताते हुए सातवें और प्रकार के विवाह का वर्णन इन शब्दों में किया है- ''लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन झपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना 'राक्षस'। शयन वा मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना 'पैशाच'।'' (सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास, पृ. 61,62)
- स्वामी जी ने यह भी नहीं सोचा कि क्या मुसलमानों ने भी अपनी औरतों को किसी और के उठा ले जाने के कारण परदा

करवाना शुरू किया था ?

- हक़ीक़त यह है कि मुसलमानों में परदा उनके धर्म की देन है। हिन्दुओं में परदे के पीछे भी उनके अपने धर्म शास्त्र हैं।
- यहूदियों और ईसाईयों में भी परदा होता है। कुछ अन्तर भले ही हो लेकिन धर्म का पालन करने वाली यहूदी और ईसाई औरतें, सब परदा करती हैं। सबके धर्म शास्त्रों में परदे की व्यवस्था है।
- स्वामी जी स्वयं कहते हैं कि लड़कियों की पाठशाला में 5 वर्ष का बालक भी न जाने पाए और लड़कों की पाठशाला में 5 वर्ष की लड़की भी न जाने पाए। लड़कियों की पाठशाला में टीचर और स्टाफ़ केवल औरतें हों। लड़कों की पाठशाला में टीचर और स्टाफ़ सब पुरूष हों। यह परदे की व्यवस्था नहीं तो और क्या है ?
- स्वामी जी ने विद्या प्राप्ति के काल में लड़के के द्वारा महिलाओं को और लड़कियों द्वारा पुरूषों को देखने और आपस में बात करने तक पर पाबंदी लगाई है। पर-स्त्री या पर-पुरूष को देखने व बात करने को उन्होंने मैथुन का ही एक प्रकार माना है। इतना सख्त परदा तो यहूदी, ईसाई व मुस्लिम, किसी में भी नहीं पाया जाता।
- स्वामी जी ने ये पाबंदियाँ वेद-स्मृति के आधार पर ही लगाई हैं।
- स्वामी जी से पहले भी हिन्दू भाई स्मृति के आधार पर अपनी महिलाओं को परदा करवाते थे। उनके परदे की शुरूआत का कारण मुसलमानों द्वारा हिन्दू लड़कियों के अपहरण को बताना बिल्कुल झूठ है।
- मुसलमानों पर ऐसे झूठे आरोप लगाने का मक़सद हिन्दुओं के दिलों में मुसलमानों के प्रति नफ़रत भरना था। जिससे भारतीय समाज की एकता और बल नष्ट हुआ। इसका सीधा लाभ अंग्रेज़ों को मिला।
- जब तक स्वामी जी जीवित रहे तब तक अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ हिन्दू-मुस्लिम एकजुट न हो सके। उनकी मौत के बाद भी हिन्दू मुसलमानों को एकजुट होने में काफ़ी समय लग गया।

¤ भारतीय नारी के हाथ का नहीं खाया स्वामी जी ने

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र की विषयसूची में पृष्ठ 8 पर लिखा है कि

'भंगन का पकाया भोजन ग्रहण नहीं किया'

यह घटना स्वामी जी के द्वारा किसी के वर्ण का निश्चय जन्म के आधार पर करने का एक और प्रमाण है। देहरादून की इस घटना का पूरा विवरण पृष्ठ 433 पर दिया गया है। ब्रह्म समाज के सदस्य बाबू कालीमोहन घोष के निमंत्रण को लेकर स्वामी जी के शिष्य पंडित कृपा राम गौड़ ने उनसे कहा-'आपने बड़ी भूल की जो कालीमोहन के यहां खाना स्वीकार किया क्योंकि यह मेरी आंखों देखी बात है कि उनके यहां एक भंगन खाना पकाया करती थी। ...फिर वह थाल वापस करके मेरे लाए हुए भोजन को खाना आरम्भ किया।'

यह घटना स्वामी के द्वारा जन्म के आधार पर भेदभाव और छूतछात करने का भी प्रमाण है।

(68) इसका नाम समाज सुधार है तो फिर बिगाड़ किसे कहा जाएगा ?

आज जातिसूचक शब्द कहने पर भी क़ानूनी पाबंदी है। स्वामी जी शिक्षाएं हिन्दू समाज की एकता और समरसता में भी बाधक हैं। आज ऐसी बातों के मानने और सिखाने पर क़ानूनी रूप से प्रतिबंध है और हर तरफ़ बराबरी और भाईचारे की बात हो रही है। जो कि इसलाम की शिक्षा है।

¤ ऊँचनीच और छूतछात मिटी, बराबरी और भाईचारा का बढ़ा

स्वामी जी ने मिथ्या मत के मिटने की प्रार्थना करते हुए कहा था कि

'परमात्मा सब के मन में सत्य का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र प्रलय को प्राप्त हों।' (सत्यार्थ प्रकाश, दशमसमुल्लास, पृष्ठ 185)

स्वामी जी की प्रार्थना का नतीजा यह हुआ कि स्वयं उन्हीं का मत काल कवलित हो गया। उन्होंने इसलाम के विरोध में वर्ण व्यवस्था को पुनर्जीवित करने की कोशिश की लेकिन हुआ क्या ?

हुआ यह कि वर्ण व्यवस्था लुप्त हो गई और ईरान से लेकर भारत तक इसलाम आर्य जाति में साक्षात होता जा रहा है और आप इस महान परिवर्तन के साक्षी बन रहे हैं। परमेश्वर ने लोगों के मन में सत्य का अंकुर डाल कर काल के द्वारा कैसा अद्भुत निर्णय दिया है!

आज आर्य आज़ाद हैं और आर्यों के देश भी लेकिन फिर भी वे वर्ण व्यवस्था का पालन नहीं करते। अगर वे उसका पालन करना चाहें तो भी नहीं कर सकते। स्वामी जी की जो बातें इसलाम के अनुकूल हैं, उनका पालन आज भी संभव है और उनकी जो बातें इसलाम के विरूद्ध हैं, वे चल नहीं पाईं। चलने वाली बात केवल इसलाम की है। अब चाहे इसलाम को इसलाम कहकर मान लो या फिर उसकी बातों को उसका नाम लिए बिना मानते रहो।

अब आपके सामने वर्ण व्यवस्था या इसलाम, ये दो विकल्प नहीं हैं बल्कि बस इसलाम ही है।

स्वामी दयानन्द जी की ग़लती यह रही कि उन्होंने वैदिक धर्म का अर्थ वर्ण व्यवस्था समझ लिया। हक़ीक़त यह है कि नियोग की भाँति ऊँचनीच और छूतछात की बातें वेद और स्मृतियों में क्षेपक हैं। हम ऐसा मानते हैं क्योंकि हम क़ुरआन के माध्यम से वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को जानते हैं। स्वामी जी भी ऐसा मान लेते तो वैदिक धर्म और इसलाम का अन्तर ही मिट जाता। तब वह धर्म को साक्षात कर पाते जो कि बराबरी और भाईचारे के रूप में प्राकृतिक रूप से सहज ही होता जा रहा है।

¤ अंत में झूठ का पर्दाफ़ाश हो जाता है

स्वामी जी बताते हैं कि

'...चाहे कितनी भी चतुराई करे परन्तु अन्त में सच-सच और झूठ-झूठ हो जाता है।' (सत्यार्थ प्रकाश,त्रयोदश.,पृ.349)

अब स्वामी जी के इस सिद्धान्त के आधार पर स्वामी जी का अन्त देखते हैं। आप यह जान ही चुके हैं कि अन्तकाल में उनका हवन छूट चुका था। मृत्यु वाले दिन वह स्नान भी नहीं कर पाए थे। अब उनके बिल्कुल अन्तिम वाक्य देखिए। मृत्यु वाले दिन अर्थात 30 अक्तूबर 1883 ई. को शाम के 6 बजे स्वामी जी ने पलंग पर सीधे लेटे हुए थे। उन्होंने कहा-

'हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तैने अच्छी लीला की।' (महर्षि दयानन्द स. का जीवन चरित्र, पृ.830)

स्वामी जी ने अपने साहित्य में कहीं भी ईश्वर और सत्पुरूषों के कर्मों को लीला नहीं कहा है लेकिन अन्तकाल आया तो जाते जाते वह ईश्वर के कर्म को भी 'लीला' कह गए। इससे समझा जा सकता है कि दुनिया से विदा होते समय उनके दिल में ईश्वर के प्रति किस प्रकार के भाव थे।

स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में धूर्त, ठग और धोखेबाज़ों को 'पोप' की संज्ञा देकर उनके बुरे कामों को 'लीला' कहा है। उन्होंने लीला का अर्थ बताते हुए कहा है-

'अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरूषों का संग न होने देना, रात दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना है।' (सत्यार्थप्रकाश, एकादश., पृ.191)

क्या यह मानना सही है कि ईश्वर लीला करता है?

स्वामी जी ईश्वर में इच्छा का होना नहीं मानते थे। वह कहते थे-

'...ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं.' (सत्यार्थ प्रकाश,सप्तम.,134)

इसके बावजूद उन्होंने अपने अंतिम कथन में ईश्वर में इच्छा का होना भी माना है। इस तरह हम देखते हैं कि जिन बातों को वह ईश्वर की महिमा के प्रतिकूल मानते थे। अपने अंत के एक वाक्य में वह ईश्वर के लिए ऐसी दो बातें कह बैठे। अपनी मान्यताओं के अनुसार जीने में तो वह असफल थे ही, मरते समय वह उनमें आस्था रखने में भी असफल रहे।

¤ ऋषि कौन होता है?

'अर्थ-ऋषि कैसे होते हैं ?, जो धर्म को साक्षात करने वाले आप्त पुरूष होते हैं, जो सब विद्याओं को यथावत् जानते हैं।' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ 10)

¤ ज्ञान किसे कहते हैं?

'यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति' जिसका जैसा गुण, कर्म, स्वभाव हो उस पदार्थ को वैसा ही जानकर मानना ही ज्ञान और विज्ञान कहलाता है और उससे उल्टा अज्ञान। (सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम., पृष्ठ 125)

(69) क्या ईश्वर, जीव, प्रकृति, परमाणु, ब्रह्माण्ड, किरण, मौसम, वेद, मनुस्मृति, शूद्र, नियोग, न्याय, शिक्षा, आवागमन और सूर्यादि पर मुनष्यों के बसे होने की कल्पनाओं को सामने रखते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वामीजी को सब विद्याओं का यथावत ज्ञान था?

(70) यदि उन्हें सब विद्याओं का यथावत ज्ञान नहीं था तो क्या उन्हें ऋषि बल्कि महर्षि कहना उचित है?

ऐसा नहीं है कि दयानन्दजी अपनी वास्तविक स्थिति से अवगत नहीं थे। एक बार एक आदमी ने जब उन्हें ऋषि कहा तो उन्होंने उसे यह कहा था - वत्स, यदि मैं महर्षि कणाद, जैमिनी के समय में होता तो, मैं पंडित ही कहलाता। ऋषियों के अभाव में मुझे लोग महर्षि कहते हैं। (युगप्रवर्तक महर्षि, पृष्ठ 128)

यह सब मानने के बावजूद वह ख़ुद को 'आप्त' पुरूष भी कह गए हैं। देखिए-

'(तद्वक्तारमवतु) सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिए कि जिससे आप की आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर, विरूद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आपकी आज्ञा है, वही धर्म है और जो विरूद्ध है वही अधर्म है।' (सत्यार्थप्रकाश, प्रथमसमुल्लास, पृष्ठ 11)

इस कथन पर पहली आपत्ति तो यही है कि 'तद्वक्तारमवतु' में आप्त शब्द आया ही नहीं है परंतु फिर भी स्वामी दयानंद जी ने दूसरों से अपनी बात मनवाने के लिए स्वयं को 'आप्त सत्यवक्ता' घोषित कर दिया। यह कथन स्वयं ही असत्य है। जिसके लिए कहा गया है, उसके लिए तो असत्य है ही।

'इससे जानना चाहिए कि यह केवल साधारण सच्चा अविद्वान था, न विद्वान्, न योगी, न सिद्ध था।'

(सत्यार्थप्रकाश, त्रयोदशसमुल्लास, पृ.347)

¤ सत्य को स्वीकारना बड़े साहस का काम है

'मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।' (सत्यार्थप्रकाश, भूमिका, पृष्ठ 2)

कृपया अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनें, अपनी आत्मा का हनन न करें अन्यथा ईश्वर की ओर से दण्डस्वरूप कठोर यातना भोगनी पड़ेगी । वेद आज्ञा स्पष्ट है- 'स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व' तू ही कर्म कर और तू ही उसका फल भोग। (यजुर्वेद 3,15)

'जो मनुष्य जीते हुए अपनी आत्मा का हनन करते हैं वे मरने के बाद अंधकारमय असुरों के लोक को जाते हैं।' (यजुर्वेद 40,3)

¤ सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का क्या करें?

'जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे। इसलिए 'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्याज्यमिति' असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को।' (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय., पृष्ठ 48)

जिन किताबों में सच के साथ झूठ भी मिला होता था उन्हें स्वामी बिरजानन्द जी नदी में फिकवा दिया करते थे। स्वयं दयानन्द जी का आचरण भी यही था और इसी की शिक्षा उन्होंने अपने मानने वालों को दी है। अब उनके साहित्य में भी सच के साथ झूठ मौजूद है तो अपने मानने वालों के लिए उनका आदेश है कि

'थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है इससे 'विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः' जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं।' (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय. पृष्ठ 48)

(71) क्या वेदमतानुयायी अपने गुरू के पद्-चिन्हों पर चलते हुए दयानन्दकृत साहित्य को विषयुक्त अन्न के समान त्यागना पसन्द करेंगे?

¤ स्वामी जी को सफलता नहीं मिली

स्वामी जी ने देखा कि हिन्दू समाज धर्म के नाम पर पाखण्ड, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन का शिकार हो गया है। वह ईश्वर के वास्तविक स्वरूप और धर्म के मर्म से वंचित हो गया है। अज्ञानी लोगों ने धर्म को व्यवसाय बना लिया है। वे मूर्तिपूजा और ग्रहपूजा के नाम पर लोगों से रूपया वसूल कर रहे हैं। उन्होंने अपनी जान ख़तरे में डाली और धर्म के धंधेबाज़ों का विरोध किया। निःसंदेह यह उनका अच्छा प्रयास था लेकिन उनकी कोशिशों से मूर्तिपूजा और ग्रहपूजा आदि बंद नहीं हुई।

स्वामी दयानन्द जी मानते थे कि हिन्दू समाज का भला वर्ण व्यवस्था की ऊँचनीच और छूतछात को मानने में है। इसीलिए उन्होंने वैदिक वर्ण व्यवस्था की स्थापना की कोशिश की लेकिन वह इस काम में भी सफल न हो सके। न उन्हें कोई 'योगी गुरु'

मिला और न ही उन्हें 'सच्चे शिव' के दर्शन हुए, जिसके लिए वह घर से निकले थे। वेदों को भी वह समझ नहीं पाए और ग़लत अर्थ कर गए। संसार के क़ैदखाने से भी किसी को मुक्ति न दिला सके बल्कि खुद ही मुक्ति न पा सके। अपने समाज के पाखण्डियों से उन्होंने संघर्ष ज़रूर किया लेकिन इसके नतीजे में उन्हें अपने प्राण गंवाने पड़े। उनका वेदभाष्य भी अधूरा ही रह गया। उन्होंने दूसरा जन्म लेकर उसे पूरा करने की बात कही लेकिन वह दूसरा जन्म भी यहां नहीं ले पाए क्योंकि आवागमन होता नहीं है। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की लेकिन वह भी अपनी स्थापना के उद्देश्य से भटक गया है-

'किन्तु हमारी शिरोमणि सभा अभी तक हठतावश मयासुर के मार्ग पर चल रही है।' (उपक्रमणिका, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ 8)

¤ सच्चे गुरु की खोजः वर्तमान समाज की ज़िम्मेदारी

स्वामी जी के दर्शन और उनके जीवन को देखने के बाद एक ऐसे आदमी की तस्वीर सामने आती है जो कि अपने मिशन में पूरी तरह असफल रहा। अपने अज्ञान और हठ के कारण वह विधवाओं, शूद्रों और मुसलमानों को उनके मानवोचित अधिकारों से वंचित करते रहे। इसे समाज सुधार नहीं कहा जा सकता। जो उन्हें अपना गुरू मानते हैं, वे भी उनके मार्ग पर चलने में, वैदिक संस्कारों का पालन करने में असफल रहे। एक गुरू की ज़रूरत मानव मात्र को हमेशा से रही है और आज भी है।

वह कौन है ? आर्य बन्धुओं के लिए यह खोज का विषय है क्योंकि यह प्रमाणित हो चुका है कि स्वामी दयानन्द जी इस जरूरत को पूरा नहीं कर सकते। उनके जीवन के कटु अनुभवों और वेदार्थ को समझ पाने में उनकी और उनसे पूर्व के भाष्यकारों की नाकामी से पता चलता है कि भारत भूमि काफी समय से वास्तविक और पूर्ण ज्ञानी गुरू से रिक्त है। यह दुखद है, लेकिन सच यही है।

इसके बावजूद हमें यक़ीन है कि भारत जल्द ही अपना खोया हुआ धर्म, सत्य और गौरव प्राप्त कर लेगा क्योंकि भारतवासी स्वभाव से ही ज्ञानाकांक्षी हैं। ग्लोबलाइजेशन के दौर में अब जाति, भाषा और राष्ट्र की बेबुनियाद दीवारें भी ढहती जा रही हैं। मशहूर चीनी कहावत है कि
'जब विद्यार्थी तैयार हो जाता है तो गुरू उपस्थित हो जाता है।'

¤ जो ढूंढता है वह पाता है लेकिन ...

गुरू की खोज का अभियान जारी रखिये क्योंकि जो ढूंढता है वही पाता है। उन जगहों पर भी तलाश कीजिए जहाँ अभी तक तलाश न किया हो। हो सकता है कि सच्चा गुरू उस रूप में और उस परिधि में मिले जिसकी कल्पना भी न की हो। सच्चा गुरू उस भेष-भाषा, देश और वंश में मिले जिसे स्वीकारना निजी अहंकार और राष्ट्रीय गर्व पर चोट करता हो। बहरहाल कल्याण के लिए सच्चा गुरू अनिवार्य है। अब वह जैसे भी मिले और जहाँ भी मिले।

'धर्म को साक्षात करना और सब विद्याओं का यथावत जानना' उसका मूल लक्षण है। आप उसे इस लक्षण से पहचान जाएंगे। ऐसे ही 'आप्त पुरूष' के उपदेश को मानने के लिए स्वयं स्वामी दयानन्द जी भी कह गए हैं-

'जो पृथिवि से लेके परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों को यथावत् साक्षात् करना और उसी के अनुसार वर्त्तना है इसी का नाम आप्ति है, इस आप्ति से जो युक्त हो उसको 'आप्त' कहते हैं। उसी के उपदेश का प्रमाण होता है, इससे विपरीत मनुष्य का नहीं. ' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्ति., पृ.14)

देखिये, जानिये, सोचिये, समझिये और फिर फैसला कीजिए क्योंकि आपके फैसले से ही आपका भविष्य निर्धारित होता है। आपके विचार से ही आपके कर्म फूटते हैं और अपने कर्मों का फल भी आपको स्वयं ही भोगना है। आप सत्य की खोज और स्वीकार के मार्ग पर आगे बढ़कर अपना जीवन स्वर्ग बनाना चाहते हैं, मुक्ति, आनंद और ईश्वर पाना चाहते हैं या फिर घृणा, तिरस्कार और अपने अंहकार की ऊंची दीवार से ही सिर टकराते रहना चाहते हैं?

पानी वहीं मिलेगा जहाँ कि वास्तव में वह मौजूद है। 'मृगमरीचिका' से किसी को आज तक पानी नसीब नहीं हुआ तो आपको कैसे मिल जाएगा?

¤ ढूंढिये लेकिन वहाँ, जहाँ कि वह सचमुच है

(72) '...सत्य असत्य के ग्रहण व त्याग करने में सदा उद्यत रहने वाले आर्य क्या दूसरों को ही उपदेश देते रहेंगे? क्या वे स्वयं

सत्य पक्ष को ग्रहण करने में हठवश संकोच ही करते रहेंगे ?' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ 7)
(73) ''क्या ऐसे व्यक्ति वेद की 'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः' इस व्यवस्था से बच सकेंगे?'' (सत्यार्थप्रकाश, प्रकाशकीय पृष्ठ)

इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए उपयोगी ग्रन्थ :

1. कुरआन मजीद : एक परिचय
लेखक : मौलाना सदरुद्दीन इसलाही
मधुर संदेश संगम, E-20 अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव
जामिया नगर, नई दिल्ली - 110025
फ़ोनः 011-26953327, 09212356332
Email: madhursandeshsangam@yahoo.co.in

2. आवागमनीय पुनर्जन्म
लेखक : डॉ. मुहम्मद अहमद
मिलने का पता उपरोक्त

3. इस्लाम : आतंक या आदर्श?
लेखक : श्री स्वामी लक्ष्मीशंकराचार्य जी
मिलने का पता उपरोक्त

4. कितने दूर कितने पास
(वेद और कुरआन फ़ैसला करते हैं)
लेखक : सैयद अब्दुल्लाह तारिक़
प्रकाशक : रौशनी पब्लिशिंग हाऊस
बाज़ार नसरुल्लाह ख़ां, रामपुर (उ.प्र.)

5. नराशंस और अन्तिम ऋषि
लेखक : डॉ. वेदप्रकाश उपाध्याय
प्रकाशक : जम्हूर बुक डिपो, निकट मुस्लिम फ़ंड
देवबन्द (उ.प्र.) 247554
online: antimawtar.blogspot.com